मार्च–2021
वर्ष-85। अंक-3। ₹-19 प्रति। ₹-220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

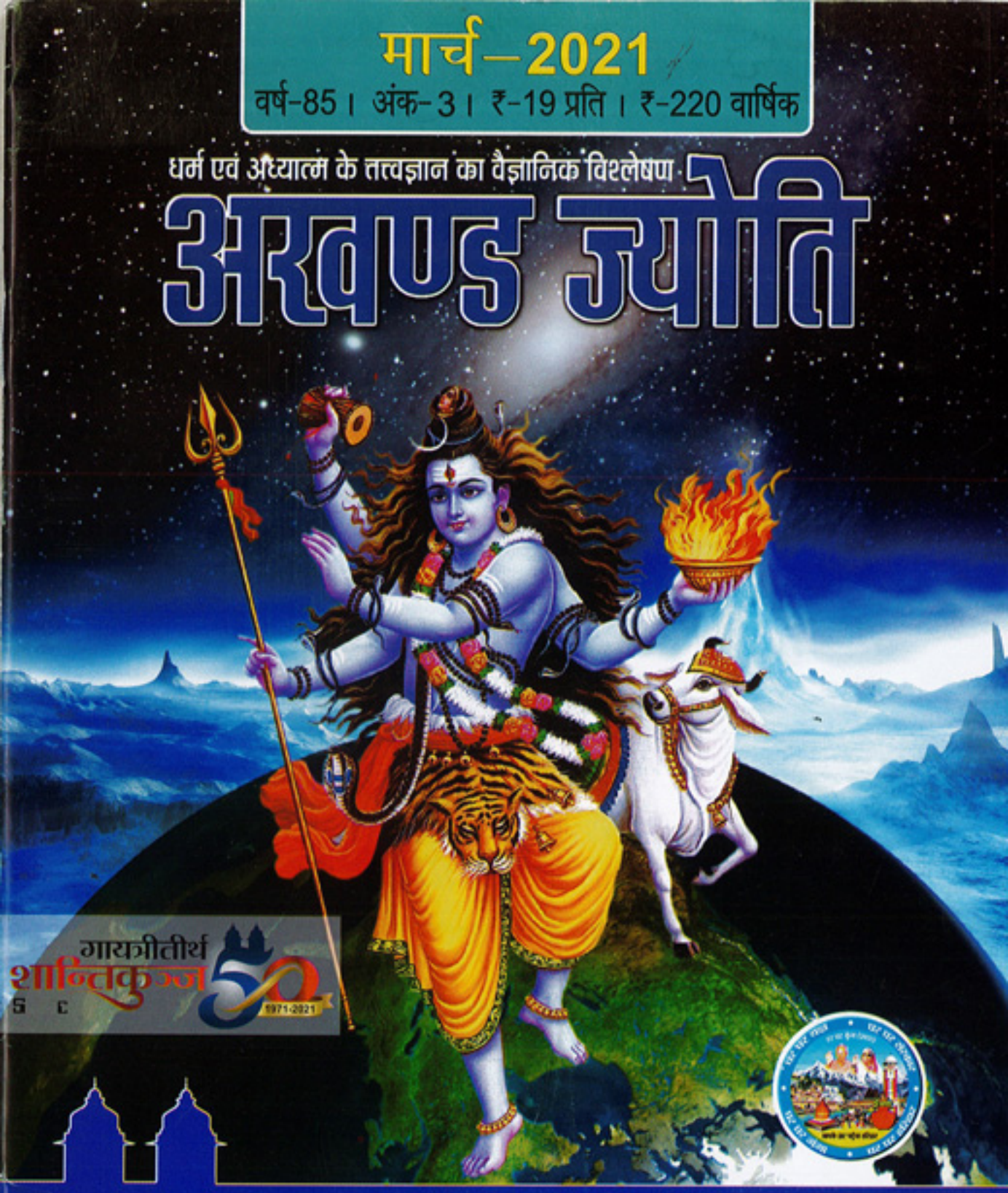

22 साधना का परम लक्ष्य है चित्त शुद्धि
28 सकारात्मक रखें सोच
48 कैसे करें उत्तीर्ण परीक्षाएँ
62 यज्ञीय अनुसंधान केंद्र की स्थापना

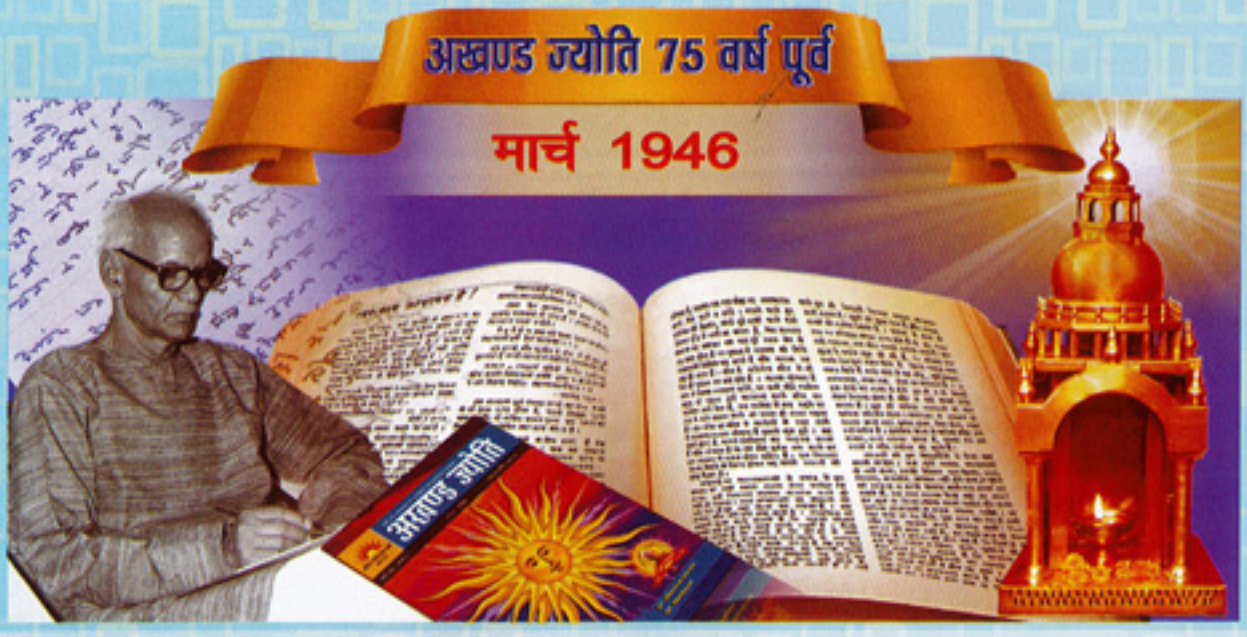

मन में से भय की भावनाएँ निकाल फेंकिए

"भयभीत होना एक अप्राकृतिक बात है। प्रकृति नहीं चाहती कि मनुष्य डरकर अपनी आत्मा पर बोझ डाले। तुम्हारे सब भय, तुम्हारे दुःख, तुम्हारी नित्यप्रति की चिंताएँ तुमने स्वयं उत्पन्न कर ली हैं। यदि तुम चाहो तो अंतःकरण को भूत-प्रेत एवं पिशाचों की श्मशान भूमि बना सकते हो। इसके विपरीत यदि तुम चाहो तो अपने अंतःकरण को निर्भयता, श्रद्धा, उत्साह के सद्गुणों से परिपूर्ण कर सकते हो। अनुकूलता या प्रतिकूलता उत्पन्न करने वाले तुम स्वयं ही हो। तुम्हें दूसरा कोई हानि नहीं पहुँचा सकता, बाल भी बाँका नहीं कर सकता। तुम चाहो तो निर्भय, परम निश्शंक बन सकते हो। तुम्हारी शुभ-अशुभ वृत्तियाँ, यश-अपयश के विचार, विवेक-बुद्धि ही तुम्हारा भाग्य निर्माण करती हैं।

भय की एक शंका मन में प्रवेश करते ही, वातावरण को संदेहपूर्ण बना देती है। हमें चारों ओर वही चीज नजर आने लगती है, जिससे हम डरते हैं। यदि हम भय की भावनाएँ हमेशा के लिए मनोमंदिर से निकाल डालें तो उचित रूप से तृप्त और सुखी रह सकते हैं। आनंदित रहने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि अंतःकरण भय की कल्पनाओं से सर्वथा मुक्त रहे। आइए, हम आज से ही प्रतिज्ञा करें कि हम अभय हैं। भय के पिशाच को अपने निकट न आने देंगे। श्रद्धा और विश्वास के दीपक से अंतःकरण में आलोकित रहेंगे और निर्भयतापूर्वक परमात्मा की इस पुनीत सृष्टि में विचरण करेंगे।"

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

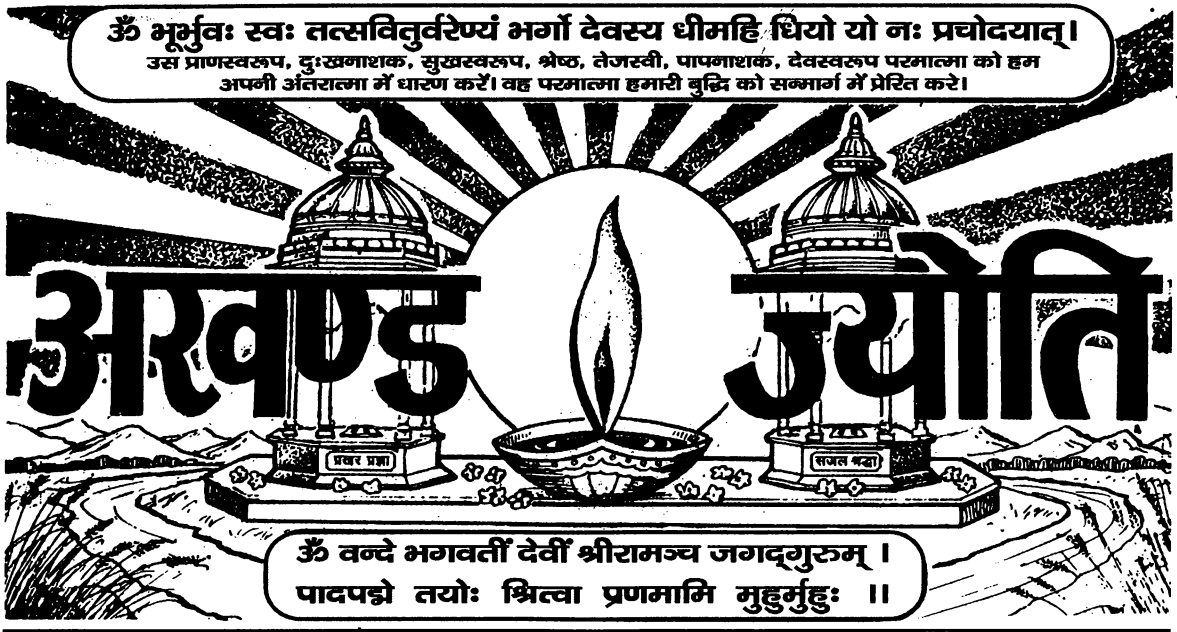

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 85
अंक	: 03
मार्च	: 2021
फाल्गुन-चैत्र	: 2077
प्रकाशन तिथि	: 01.02.2021

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-

आजीवन (बीसवर्षीय)
भारत में : 5000/-

भक्ति

भक्ति का पथ और ज्ञान का पथ पहुँचते एक ही स्थान पर हैं, परंतु दोनों के माध्यमों में गंभीर भिन्नता है। ज्ञानी जो कदम अपनी यात्रा के अंतिम चरण पर उठाता है, भक्त वही कदम अपनी यात्रा के प्रथम चरण में उठा लेता है। भक्ति का अर्थ समर्पण से है। भक्ति का अर्थ स्वयं को परमात्मा के हाथों में बेशर्त सौंप देने से है। ज्ञानी भी अंत में इसी निष्कर्ष को उपलब्ध होता है कि कितना भी आगे बढ़ जाऊँ, पर तब भी मेरे आगे अनेकों पायदान पहले से खड़े हैं। तब उसे भी 'नेति-नेति' करके, ज्ञान की उस अस्मिता को त्यागकर अपने अज्ञान को स्वीकारना पड़ता है।

कथा है कि एक ज्ञानी व्यक्ति एक भक्त से मिलने गया व उससे बोला—"मैंने सारे ग्रंथ पढ़ लिए, सारे शास्त्र मुझे कंठस्थ हैं, फिर परमात्मा का अनुभव अब तक क्यों नहीं कर पाया हूँ?" भक्त ने उसके प्रश्न का उत्तर न देकर, उसे एक जल से भरा पात्र दिया व बोला—"आप जल ग्रहण करें, फिर आपकी जिज्ञासा का समाधान करता हूँ।" ऐसा कहते हुए उसने उसके जल से भरे पात्र में और जल डालना प्रारंभ कर दिया। ज्ञानी यह देखकर चिल्लाते हुए बोला—"अरे! भरे पात्र में जल डालने से सारा जल तो बाहर गिर जाएगा, पात्र में क्या जाएगा?" भक्त बोला—"बंधु! आप भी तो अपने पांडित्य के अभिमान से लबालब भरे ही हैं, स्वयं को खाली करो और अंदर परमात्मा के लिए स्थान बनाओ, तभी तो परमात्मा का अनुभव मिल सकेगा।"

भक्ति का अर्थ स्वयं को परमात्मा की उपस्थिति से भर लेना है। जब हमारे प्रत्येक श्वास पर परमात्मा के ही हस्ताक्षर हो जाते हैं, हमारे व्यक्तित्व का प्रत्येक घटक परमात्मा में ही रूपांतरित हो जाता है तब हममें और परमात्मा में कोई भेद नहीं रह जाता है। 'मैं' के मिटने पर भगवान की उपस्थिति का अनुभव होता है। भक्त इस कदम को पहले चरण पर ही लेता है और ज्ञानी, सब किताबों में भटकने के बाद। सर्वस्व का समर्पण ही भक्ति का पथ है। ❑

विषय सूची

- भक्ति 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  वैश्विक नागरिकता का घोषणा पत्र 5
- जीवन के सर्वांगीण उत्कर्ष का पथ 7
- जीवन के रूपांतरण की कथा 9
- **पर्व विशेष (महाशिवरात्रि)**
  भगवान शिव के ज्योतिर्लिंग 11
- सर्वधर्म समभाव का मंत्र—गायत्री महामंत्र 14
- अनाथों के नाथ हैं जगन्नाथ 17
- जल ही जीवन है 19
- वायु प्रदूषण का बढ़ता संकट 20
- साधना का परम लक्ष्य है चित्तशुद्धि 22
- अनंत संभावनाओं वाला कण
  'हिग्स बोसोन' 24
- भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहन न दें 26
- सकारात्मक रखें सोच 28
- धार्मिक चिंतन में सामाजिक एकता 30
- आचार्य शंकर का कर्म संन्यास 32
- धर्म के सामयिक प्रस्तोता
  श्रीरामकृष्ण परमहंस 35
- **चेतना की शिखर यात्रा—222**
  विडंबना और तथ्य 38
- जल संरक्षण की परंपरागत प्रक्रिया 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—143**
  मानवीय चेतना का समीक्षात्मक अध्ययन 44
- परिष्कार का स्वर्णिम अवसर हैं
  कठिनाइयाँ 47
- कैसे करें उत्तीर्ण परीक्षाएँ? 48
- **युगगीता—250**
  जीवन को मात्र
  भोगने का माध्यम मानते हैं असुर 50
- स्व-मूल्यांकन और आत्मसुधार 52
- मिर्जा गालिब की नजर में बनारस 54
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—3**
  व्यक्तित्व का परिष्कार (समापन किस्त) 56
- **विश्वविद्यालय परिसर से—189**
  यज्ञीय अनुसंधान केंद्र की स्थापना 62
- **अपनों से अपनी बात**
  जाग्रत तीर्थस्थल है—शांतिकुंज 64
- उल्लासी रंगों की होली (कविता) 66

आवरण पृष्ठ परिचय

तांडव नृत्य कर रहे भगवान शिव

मार्च-अप्रैल, 2021 के पर्व-त्योहार

मंगलवार	09 मार्च	विजया एकादशी	मंगलवार	13 अप्रैल	नवरात्र आरंभ/ आनंद संवत्सरारंभ
गुरुवार	11 मार्च	महाशिवरात्रि	बुधवार	14 अप्रैल	डॉ. भीमराव आंबेडकर जयंती
सोमवार	15 मार्च	रामकृष्ण परमहंस जयंती	गुरुवार	15 अप्रैल	गणगौर
शुक्रवार	19 मार्च	सूर्य षष्ठी	रविवार	18 अप्रैल	सूर्य षष्ठी
सोमवार	22 मार्च	होलाष्टक	बुधवार	21 अप्रैल	श्रीरामनवमी
गुरुवार	25 मार्च	आमलकी एकादशी	शुक्रवार	23 अप्रैल	कामदा एकादशी
रविवार	28 मार्च	होलिका दहन	रविवार	25 अप्रैल	महावीर जयंती
सोमवार	29 मार्च	होली/धूलिवंदन	मंगलवार	27 अप्रैल	हनुमान जयंती
शनिवार	03 अप्रैल	शीतला सप्तमी	शुक्रवार	30 अप्रैल	गणेश चौथ
बुधवार	07 अप्रैल	पापमोचनी एकादशी			
सोमवार	12 अप्रैल	सोमवती अमावस्या			

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** ***—संपादक***

विशिष्ट सामयिक चिंतन

वैश्विक नागरिकता का घोषणा पत्र

आज लगभग संपूर्ण विश्व ही संयुक्त राष्ट्र संघ से परिचित है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक हो जाता है कि इसके इतिहास एवं उद्देश्यों पर एक दृष्टि डाल ली जाए। संयुक्त राष्ट्र संघ की शुरुआत संयुक्त राष्ट्र संघ घोषणा पत्र या चार्टर के आधार पर जून, 1945 में की गई, जिस पर उस समय ग्रेट ब्रिटेन, चीन, सोवियत संघ एवं अमेरिका द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और उस साल का अक्टूबर होते तक लगभग 50 देश इसके सदस्य बन चुके थे। आज उसी संयुक्त राष्ट्र संघ के 193 देश सदस्य हैं। इसका मुख्य उद्देश्य मानवता के मूल भावों या मानवाधिकारों की स्थापना करना था।

सन् 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों का सार्वभौम घोषणा पत्र जारी किया गया, जिसमें विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जैसे विषय सम्मिलित किए गए थे। प्रत्येक वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ में संयुक्त राष्ट्र संघ की वार्षिक बैठक, जिसे यूनाइटेड नेशन्स जनरल असेंबली कह कर पुकारते हैं आयोजित की जाती है। इस बैठक में अनेक देशों के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री सभा को संबोधित करते हैं और उठाए गए बिंदुओं पर अपनी सहमति या असहमति व्यक्त करने के लिए प्रत्येक राष्ट्र के पास एक ही वोट होता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक शाखा सिक्यूरिटी काउन्सिल के नाम से जानी जाती है। इसके सदस्य देशों की संख्या 15 है, जिसमें 5 स्थायी सदस्य हैं, यथा—ब्रिटेन, चीन, फ्रांस, रूस एवं अमेरिका। शेष 10 सदस्य 2 वर्षों के अंतराल के लिए अन्य देशों के वोट के द्वारा चुने जाते रहे हैं। 5 स्थायी सदस्य किसी भी बिंदु पर अन्य देशों के वोटों को रोकने के लिए वीटो का प्रयोग कर सकते हैं। वैसे तो सिक्यूरिटी काउन्सिल की स्थापना के पीछे का मूल उद्देश्य विश्व शांति की स्थापना करना है तथापि ऐसा होता कम ही देखा जाता है।

यूनाइटेड नेशन्स का मुख्य पद यू.एन. के सेक्रेटरी जनरल या महासचिव द्वारा निभाया जाता है। उस पद का निर्धारण यू.एन. के 5 स्थायी सदस्यों के द्वारा किया जाता है, इसलिए ऐसा संभव ही नहीं हो पाता कि महासचिव की कार्यप्रणाली इन सदस्यों के या सदस्य देशों के हस्तक्षेप से प्रभावित न होती हो। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ का मूल उद्देश्य मानवता की रक्षा करना, विश्व शांति को प्रभावी ढंग से स्थापित करना था—तब भी यह महत्त्वपूर्ण वैश्विक संगठन इस उद्देश्य को प्राप्त करता नहीं ही दिखाई पड़ता है। आज अनेक लोग इसकी प्रासंगिकता पर ही प्रश्नचिह्न लगाते नजर आते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव को ऐसी परिस्थितियों का आभास बहुत पहले से ही था और इसीलिए उन्होंने इक्कीसवीं सदी में मानवता के संविधान के रूप में युग निर्माण सत्संकल्प की रचना की। मार्च, 1962 को अखण्ड ज्योति में पहली बार प्रकाशित हुए इस घोषणा पत्र में परमपूज्य गुरुदेव ने युग निर्माण योजना का भी प्रारंभिक उद्घोष प्रदान किया।

इसी आशय को ध्यान में रखते हुए उन्होंने इस सत्संकल्प की पहली पंक्ति को मानवीय जीवन के प्रमुख कर्त्तव्य के लिए समर्पित करते हुए लिखा—'मैं आस्तिकता और कर्त्तव्यपरायणता को मानव जीवन का धर्मकर्त्तव्य मानता हूँ।' साथ ही उन्होंने यह भी लिखा कि यही वह विचार बीज है, जो विश्व मानवता का कल्याण करेगा।

अपने इस सत्संकल्प में परमपूज्य गुरुदेव ने पहला स्थान आस्तिकता को दिया, जिसको अपनाने पर व्यक्ति सन्मार्ग के पथ पर चलना सीखता है और एक दिव्य सत्ता के अनुशासन में जीवन गुजारना सीखता है। यह वो आस्तिकता नहीं है, जो व्यक्ति को मात्र पूजा-पाठ में लगने को कहती है; बल्कि यह वो आस्तिकता है, जो व्यक्ति को कर्त्तव्यपरायण बनाती है। जो विश्वव्यापी ईश्वरीय सत्ता की उपस्थिति को स्वीकार लेता है, वही सच्चा कर्त्तव्यपालक बन जाता है। ऐसे में व्यक्ति पहले तो शरीर के प्रति कर्त्तव्य का पालन करना समझता है, ताकि वह उसे भगवान का मंदिर मानकर आत्मसंतोष एवं नियमितता के माध्यम से स्वस्थ, नीरोग तथा सशक्त रख सके।

परमपूज्य गुरुदेव ने संपूर्ण विश्व के लिए, बल्कि विश्व के प्रत्येक नागरिक के लिए यह स्पष्ट किया कि शरीर के साथ-साथ मन को स्वच्छ रखना, निष्पाप, निष्कलुष रखना भी उतना ही जरूरी है; क्योंकि यदि मानसिक स्वास्थ्य सही रहा तो न मनोविकार सताएँगे और न ही दुर्भावनाएँ।

इसीलिए परमपूज्य गुरुदेव ने इस घोषणा पत्र में मनन व चिंतन, स्वाध्याय एवं सत्संग को प्रमुख स्थान प्रदान किया। ऐसी सत्प्रवृत्तियाँ मनुष्य को सदा आत्मनिर्माण व आत्मविकास की प्रेरणा देती हैं। सद्विचारों के लिए श्रेष्ठ साहित्य ही वरेण्य होना चाहिए, इसलिए सतत स्वाध्यायरत रहकर सही चिंतनशैली का अभ्यास करने का निर्देश परमपूज्य गुरुदेव ने दिया। सत्य यही है कि यदि इतनी व्यवस्था भी कोई जीवन में कर ले तो वह स्वयं तो बदलता है साथ ही अनेकों के जीवन को भी बदल देता है।

इसके उपरांत परमपूज्य गुरुदेव ने सामुदायिकता की भावना के विकास हेतु आध्यात्मिक साम्यवाद का मूलमंत्र प्रदान किया कि सबके हित में ही अपना हित है। यही सामाजिक उत्थान का मूल आधारस्तंभ है। इसी के साथ यदि 'मैं' नहीं 'हम' की बात सोची जाए तथा वर्ण, लिंग के भेदभाव को समाप्त किया जाए—ऐसा भी परमपूज्य गुरुदेव ने इस घोषणा पत्र में लिखा।

इसके बाद आत्मसुधार की प्रेरणा देने के लिए नागरिकता, नैतिकता, मानवता, सच्चरित्रता, शिष्टता, उदारता जैसे गुणों को अपनाने के लिए उन्होंने प्रेरित किया। इन गुणों को जो अपने जीवन में उतारना चाहें वे साधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा जैसे गुणों को अपनाने हेतु प्रयत्न कर सकते हैं।

इसके साथ ही एक अत्यंत प्रगतिशील चिंतन परमपूज्य गुरुदेव ने यह दिया कि परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व दिया जाए एवं अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा, नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य किया जाए। परमपूज्य गुरुदेव इस घोषणा पत्र में स्वार्थ को नहीं, परमार्थ को प्रधानता देते हुए सत्प्रवृत्तियों के विस्तार हेतु समय, प्रतिभा, ज्ञान एवं पुरुषार्थ का एक अंश प्रत्येक को लगाने को कहते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि प्रत्येक विश्व नागरिक इस संकल्प को अपनाए कि वह दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेगा, जो उसे अपने लिए पसंद नहीं।

इसी के साथ यह सत्संकल्प यह घोषणा करता है कि नर-नारी परस्पर पवित्र दृष्टि रखें, ताकि नारी के प्रति भोग्या की जगह सम्मान का भाव उपज सके। पवित्रता का ऐसा भाव परमपूज्य गुरुदेव ने इस सत्संकल्प में निर्दिष्ट किया। अंत में उन्होंने प्रत्येक मनुष्य को यह विश्वास रखने को कहा कि हम ही अपने भाग्य के निर्माता हैं और हमारे सुधार से ही युग का सुधार संभव है।

इस सत्संकल्प का एक-एक अक्षर क्रांति का बीज है और यदि इसे विश्व का प्रत्येक नागरिक और प्रत्येक देश जीवन में उतार ले तो संपूर्ण विश्व को बदलते देर नहीं लगने वाली है। आज जब संयुक्त राष्ट्र संघ अपनी प्रासंगिकता को तलाशता नजर आता है तो ऐसे में परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त युग निर्माण सत्संकल्प पूरे विश्व के लिए एक सार्वभौम घोषणा पत्र के रूप में विद्यमान है। शांतिकुंज की स्थापना की स्वर्ण जयंती के अवसर पर आज इसे ही सर्वत्र स्थापित करने की आवश्यकता है। ❑

समस्त संसार के मूर्द्धन्यों, शक्तिवानों और विचारवानों की आशंका एक ही है कि विनाश होने जा रहा है। हमारा अकेले का कथन यह है कि उलटे को उलटकर ही सीधा किया जाएगा। हमारे भविष्यकथन को अभी ही बड़ी गंभीरतापूर्वक समझ लिया जाए। विनाश की घटनाओं को प्रचंड तूफानी प्रवाह अगले दिनों उड़ाकर कहीं ले जाएगा और अँधेरा चीरता हुआ प्रकाश से भरा वातावरण दृष्टिगोचर होगा। यह ऋषियों के पराक्रम से ही संभावित है, इसमें कुछ की दृश्यमान व कुछ की परोक्ष भूमिका भी हो सकती है।

—परमपूज्य गुरुदेव

जीवन के सर्वांगीण उत्कर्ष का पथ

मनुष्य इस धरती का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और इसकी संभावनाएँ असीम हैं। महाभारत के शांतिपर्व में महर्षि वेदव्यास मानव को इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी घोषित करते हैं। सभी धर्मों एवं संस्कृतियों का मत है कि मानव का विकास एक सीमा तक ही संभव है, वह अधिक-से-अधिक पैगंबर—देवदूत तो बन सकता है, लेकिन भगवान नहीं। जबकि सनातन धर्म एवं संस्कृति में स्पष्ट घोषित किया गया है कि **जीवो ब्रह्मैव नापरः** अर्थात जीव ब्रह्म की परमसत्ता के समकक्ष है। इसका कारण इस मानव देह में उसके अभ्युदय एवं निःश्रेयस की उन समस्त संभावनाओं का होना है, जिनके आधार पर उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं कहा जा सकता है।

ऐतरेय उपनिषद् में कहा गया है कि यह पुरुष परमात्मा का प्रकाश स्थान है, जिसमें परमात्मा प्रकाशित होता है। मानव शरीर में आत्मा का आविर्भाव स्तर सभी प्राणियों से अधिक है। उसमें ज्ञान भी है और प्रज्ञान भी। इसी आधार पर शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि नर ही नारायण के सर्वाधिक समीप है। भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में, मैंने अनेक प्रकार के शरीरों का निर्माण किया, किंतु मुझे यह मनुष्य शरीर सबसे अधिक प्रिय है। आचार्य शंकर विवेक चूड़ामणि में तीन अतिदुर्लभ अनुग्रहों—मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व तथा महापुरुषसंश्रय में सर्वप्रथम मनुष्यत्व को ही प्रधान मानते हैं।

मनुष्य जीवन के इस महत्त्व को देखते हुए ही शास्त्रों में पग-पग पर इस बहुमूल्य जीवन को पूर्ण सजगता एवं अपार धैर्य-निष्ठा के साथ सँजोने एवं सँवारने के लिए कहा गया है। तीर्थंकर महावीर मनुष्य जीवन के महत्त्व को देखते हुए कहते हैं कि कर्मों के फल बड़े प्रगाढ़ एवं तीव्र होते हैं। इसलिए हे जीव, क्षणभर के लिए भी तू प्रमाद न कर। देवी भागवत इस सुरदुर्लभ मानव जन्म के प्रमुख कर्त्तव्य की ओर इशारा करते हुए कहता है कि इस अनित्य मानव देह को पाकर, इसके द्वारा नित्य, शाश्वत सत्य तत्त्व को जानने का प्रयास कर आत्मकल्याण की प्राप्ति करनी चाहिए।

शास्त्रों की इन घोषणाओं के बावजूद देखा जाए तो इस संसार में अधिकांश व्यक्तियों का जीवनभर का पुरुषार्थ देह-मन के बंधनों के परे नहीं जा पाता। जो मुक्त होने का प्रयास करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता हुआ पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि करता है, जो क्रमशः हैं—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष।

ये देव संस्कृति के चार प्रमुख आधार हैं, जिन पर इसका समूचा जीवन दर्शन टिका हुआ है। ये मानव जीवन की यात्रा की परम आवश्यक अनिवार्यताएँ भी हैं। इनके दो ही मूल प्रयोजन या लक्ष्य हैं—(1) काम और (2) मोक्ष तथा इन दोनों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए दो ही साधन हैं—(1) अर्थ और (2) धर्म। दो साध्य और दो साधन का जोड़ा मिलकर पुरुषार्थ चतुष्टय बनाता है। ये ही मानव जीवन के मुख्य उद्देश्य हैं।

कोई अर्थ अर्थात धन की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करता है, तो कोई काम अर्थात सुख के लिए प्रयासरत रहता है। कोई इन दोनों के मूल धर्म के लिए चेष्टारत रहता है। धर्म की प्राप्ति पर अर्थ और काम तो स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं। इन तीनों के विधिवत् उपार्जन के साथ अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष अर्थात बंधनमुक्ति को मनुष्य अनायास ही प्राप्त हो जाता है, जो मानव जीवन की सफलता का द्योतक है।

परमपूज्य गुरुदेव पुरुषार्थ चतुष्टय की युगानुकूल व्याख्या करते हुए कहते हैं कि इक्कीसवीं सदी का सतयुगी मानव सुसंस्कृत एवं सभ्य होगा। धर्मनिष्ठा व संवेदना को विकसित किए बिना वह अर्थोपार्जन व उसका सुनियोजन नहीं कर सकता और न ही परिष्कृत काम, सुख की सिद्धि कर सकता है। अतः अभ्युदय या सर्वांगीण उन्नति-प्रगति के तीन साधन हुए—अर्थ, काम और धर्म। परिष्कृत काम, फिर अर्थ और उससे भी बढ़कर धर्म। फिर निःश्रेयस, जिससे बढ़कर और कोई फल न हो।

महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है कि धर्म में फल की अभिलाषा अर्थात उसका सकाम हो जाना, अर्थ में

निगूहन अर्थात उसे छिपाना, न उसका दान में सुनियोजन करना, न उसका उपभोग ही करना अर्थात परिग्रह करना तथा काम में संप्रमोह, अधिकाधिक मोह-वासनाओं के जाल में फँसते जाना—ये तीन मल अर्थात दोष व्यक्ति के जीवन को निरंतर आक्रांत किए रहते हैं। इन्हीं को क्रमशः अहंता, तृष्णा और वासना कहा गया है। इन तीन भवबंधनों से मुक्त होने को जीवनमुक्ति या मोक्ष कहा गया है।

इसीलिए ऋषि सदैव यह संदेश देते आए हैं कि सकाम नहीं, निष्काम भाव से धर्म का अनुष्ठान करो। अर्थ का उपार्जन उपभोग हेतु नहीं, त्याग के लिए करो तथा काम का सेवन, **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्** के अनुसार शरीर के रक्षण मात्र के लिए करो। जो भी व्यक्ति या समाज इन सूत्रों का पालन कर रहा होगा, वह कभी दुःखी, विक्षुब्ध नहीं हो सकता।

पाश्चात्य उपभोगप्रधान सभ्यता एवं समाज, काम पर केंद्रित है तथा अर्थ पर जोर देता है। आधुनिक इनसान के जीवन में धर्म अर्थात नीतिमत्ता, संवेदना, वर्जनाएँ, मर्यादाएँ तथा जीवन को दिशा देने वाले तत्त्वज्ञान का अभाव होने के कारण वह भवबंधनों में जकड़ता जा रहा है और धर्म के अभाव में संताप, दुःख, विग्रह, विद्वेष में उलझकर संतप्त जीवन जी रहा है।

मानव चेतना के मर्मज्ञ ऋषिओं ने मानव के सामने प्रारंभ से ही दो मार्ग स्पष्ट किए—प्रेय और श्रेय। पहला व्यक्तिगत सुख कामना प्रधान और दूसरा समष्टिगत सुख भावना प्रधान। एक अर्थ और काम को प्रधानता देता है तो दूसरा धर्म के आधार पर अर्थ और काम का उपार्जन एवं सेवन करता है, जो व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाता है।

देव संस्कृति सभी पुरुषार्थों की त्याग में प्रतिष्ठा तथा जीवन के उदारीकरण का आदर्श प्रतिपादित करती है। कमाने के लिए मना नहीं करती, लेकिन बाँटने पर जोर देती है। इसमें भोग का निषेध नहीं है, लेकिन संयम को साथ में जोड़ा गया है। धर्म और मोक्ष के लिए प्रयत्नशील न होकर केवल अर्थ और काम की ही चिंता करना संपूर्ण पुरुषार्थों से हाथ धो बैठना है। देव संस्कृति गृहस्थ जीवन जीते हुए इन पुरुषार्थों के संपादन की व्यावहारिक नीति सुझाती है और इस शरीर व मन को जीता-जागता देवालय बनाते हुए जीवन के सर्वांगीण उत्कर्ष एवं जीवन सिद्धि का मार्ग दिखाती है। ❑

भीष्म पितामह शरशय्या पर लेटे हुए थे। उनका अंत समय निकट आ गया था। युधिष्ठिर उनसे मिलने पहुँचे। पितामह की स्थिति देख उनकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली। भीष्म समझ गए कि युधिष्ठिर उनकी स्थिति के लिए स्वयं को अपराधी समझ रहे हैं। उन्होंने युधिष्ठिर को सांत्वना देते हुए कहा—"वत्स! दुःखी मत हो। पुरातनकाल में सूर्यवंश में देय नामक राजा ने जन्म लिया। वह स्वभाव से ही दुराचारी और दुष्कर्मों के लिए प्रेरित रहा करता था। राज्य में त्राहि-त्राहि मच गई। सदाचार और धर्म की स्थापना करने के लिए ऋषियों को उसका वध करना पड़ा। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र पृथु राजा बना। वह धर्मपरायण था और अपने सत्कर्मों से उसने पुनः वंश का नाम उज्ज्वल किया।" यह बताते हुए भीष्म पितामह युधिष्ठिर से बोले—"पुत्र! आज धर्म की रक्षा हेतु तुम्हें मेरे विरुद्ध शस्त्र तानने पड़े। इसे निजी युद्ध के रूप में मत देखो। श्रेष्ठ मूल्यों की स्थापना हेतु कभी-कभी कठोर मार्ग अपनाना पड़ता है, पर किसी भी स्थिति में मनुष्य को धर्ममार्ग से च्युत नहीं होना चाहिए।"

जीवन के रूपांतरण की कथा

गुरु नानक देव परमात्मा के परम प्रकाश से प्रकाशित एक अवतारी पुरुष थे। वे परमात्मा के परम ज्ञान में स्थित एक उच्चकोटि के संत व देवपुरुष थे, महापुरुष थे। परम ज्ञान की उपलब्धि पाकर उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक स्थानों की यात्राएँ कीं और जनमानस को अपने दिव्य ज्ञान से प्रकाशित किया। गुरु नानक देव के उपदेशों का लोगों पर बड़ा गहरा असर पड़ता था और लोग उनके बताए ईश्वर के मार्ग पर चलने को व दिव्य जीवन जीने को प्रेरित होते थे।

ऐसी ही एक रोचक व प्रेरक कथा है, जिसके अनुसार गुरु नानक देव ने अपने उपदेश से डाकुओं की जिंदगी भी बदल दी थी। कहते हैं कि एक बार गुरु नानक देव अपने भ्रमण के दौरान जगन्नाथ पुरी जा रहे थे। उस जमाने में आज की तरह यातायात के साधन उपलब्ध नहीं थे। इसलिए लोग या तो पैदल चला करते थे या घोड़ों की सवारी कर यात्राएँ करते थे।

गुरु नानक देव को पैदल भ्रमण करना बहुत पसंद था; क्योंकि पैदल चलते हुए ही वे लोगों की जिंदगी से रूबरू होते थे और उन्हें पीड़ा से मुक्ति दिलाने के उपाय बताने के साथ-साथ दिव्य जीवन, मधुर जीवन, मंगलमय जीवन जीने की प्रेरणा देते थे।

वे पैदल चलते हुए जगन्नाथ पुरी की ओर जा रहे थे कि तभी उनका सामना कुछ डाकुओं से हो गया। डाकुओं के इस गिरोह का सामना अब तक न जाने कितने लोगों के साथ हो चुका था। इस गिरोह ने अब तक न जाने कितने लोगों को लूटने के साथ-साथ उनकी हत्याएँ भी की थीं, पर उस दिन गुरु नानक देव को देखते ही वे सभी अवाक् रह गए।

गुरु नानक देव के चेहरे पर छाए अपूर्व तेज, परम शांति, निर्भयता और निस्तब्धता को देख वे सभी अचंभित थे, आश्चर्यचकित थे; क्योंकि उस दिन से पूर्व उनका सामना किसी ऐसे व्यक्ति से हुआ ही नहीं था। डाकुओं के सरदार ने कहा—"इस व्यक्ति के चेहरे पर जैसी आभा है, वह अब तक किसी के भी चेहरे पर दिखाई नहीं दी। संभवत: यह बहुत मालदार, धनवान व्यक्ति है, जिसे लूटकर हम सभी जीवनभर के लिए मालामाल हो जाएँगे, धनवान हो जाएँगे।" उसने अपने पूरे गिरोह के साथ गुरु नानक देव को घेर लिया और बोला—"तुम्हारे पास निश्चित ही कोई बेशकीमती वस्तु है, जिसके कारण तुम इतने अधिक प्रसन्न और शांत दिख रहे हो। तुम्हारे पास जो भी बेशकीमती वस्तुएँ हैं, हीरे-माणिक्य, सोने-चाँदी आदि हैं वे सभी निकालकर हमें दे दो, नहीं तो हम अभी तुम्हारी हत्या कर देंगे।"

डाकू पूरी तैयारी के साथ आए थे, पर उन्हें देखकर भी गुरु नानक देव बिलकुल बेखौफ व निर्भय थे। गुरु नानक देव बोले—"ठीक है। तुम सभी जो कुछ लेना चाहते हो, ले सकते हो, पर मेरी एक आखिरी इच्छा भी है।" डाकुओं के सरदार ने कहा—"आज तक हमसे किसी ने अंतिम इच्छा का जिक्र नहीं किया, पर तुम हमें औरों से बिलकुल अलग दिखते हो। इसलिए हम तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे। चलो जल्दी बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है?"

गुरु नानक देव मानव मन के मर्मज्ञ थे। सो उन्होंने कहा—"मेरी अंतिम इच्छा यह है कि जब तुम मुझे मार दो तब तुम मेरे शव का अंतिम संस्कार जरूर कर देना, ताकि इस मानवदेह का अपमान न हो। इसलिए पहले आग जलाने का प्रबंध कर लो। गुरु नानक देव की इच्छा जानकर पहले तो डाकू चकित हुए, लेकिन फिर उन्होंने सोचा—यह कोई ऐसी माँग नहीं, जिसे हम पूरा न कर सकें। इसलिए सरदार अपने दो साथियों के साथ लकड़ियाँ लाने के लिए रवाना हुआ, शेष अन्य डाकू गुरु नानक देव को घेरे रहे।

सरदार अपने दो साथियों के साथ लकड़ियाँ लाने के लिए चला जा रहा था कि तभी उन्हें कहीं दूर से धुआँ उठता हुआ दिखाई देने लगा। वे उसी दिशा की ओर बढ़ चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि गाँव के लोग एक शव की अंत्येष्टि कर रहे हैं। डाकू उन लोगों के पास गए और उनकी बातें सुनने लगे। लोग उस मृतक की निंदा कर रहे थे।

एक व्यक्ति कह रहा था—"अच्छा हुआ कि यह दुष्ट, पापी, हत्यारा, शैतान मर गया, वरना यदि यह जीवित

रहता तो न जाने यह और कितने लोगों को दुःख देता, पीड़ा देता, उन्हें सताता, मारता और अत्याचार करता।''

उसी भीड़ में कोई दूसरा व्यक्ति कह रहा था—''ऐसा अधर्मी, पापी, दुष्ट और दूसरों को दुःख देने वाला पुत्र पैदा हो, इससे तो यही अच्छा है कि भगवान व्यक्ति को निस्संतान ही रहने दे। ऐसा पुत्र पाकर भी व्यक्ति भला क्या कर सकेगा?'' तभी किसी तीसरे व्यक्ति ने कहा—''भला ऐसा जीवन भी कोई जीवन है, जिसमें व्यक्ति इनसान के रूप में जन्म लेकर भी हैवान और शैतान जैसा जीवन जिए। ऐसा जीवन भी कोई जीवन है, जिसमें व्यक्ति कोई नेक काम ही न कर सके। ऐसे जीवन पर तो धिक्कार है।''

डाकुओं ने जब उस मृतक के विषय में लोगों को ऐसी बातें करते सुना तो उन्हें मन-ही-मन भारी ग्लानि हुई। उन्हें लगा कि हमने भी तो अपने जीवन में ऐसे ही कुकृत्य किए हैं, जिनके कारण इस मृतक व्यक्ति की निंदा हो रही है। उन्हें अपने किए पर भारी पश्चात्ताप हुआ। वे वहाँ से चुपचाप निकल आए और वापस गुरु नानक देव की ओर दौड़ पड़े। वे सोच रहे थे कि वह व्यक्ति जिसने अपनी अंतिम इच्छा के रूप में हमें अग्नि और लकड़ियाँ लाने को कहा था, वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। वह निश्चित ही कोई असाधारण व्यक्ति है। तभी तो उसने हमें ऐसा करने के लिए प्रेरित किया, जिससे हमें हमारी गलतियों का एहसास हो सके। वे सभी दौड़ते हुए गुरु नानक देव के पास पहुँचे और उनके चरणों में गिर पड़े।

वे सभी गुरु नानक देव के चरणों को पकड़कर बोले—''महाराज! आप कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। आज तक हमने न जाने कितने अधर्म किए हैं, पापकर्म किए हैं, बुरे कर्म किए हैं, लेकिन अब तक हमें किसी ने भी ऐसा उपदेश नहीं दिया, हमें हमारे बुरे कर्मों का एहसास नहीं कराया, जैसा कि आज आपके माध्यम से हमें हुआ है। महाराज! अब आप ही हमें बताइए कि हम क्या करें?'' गुरु नानक देव बोले—''सबसे पहले यह काम छोड़ दो और प्रतिज्ञा करो कि जीवन में कभी चोरी नहीं करोगे और कभी किसी की हत्या नहीं करोगे।''

गुरु नानक देव आगे बोले—''अंतर्यामी परमात्मा हमारे सभी कर्मों को देखता है। भूलवश तुम सबने अब तक की जिंदगी पाप व अधर्म के मार्ग पर चलते हुए बिता दी। अब सँभल जाओ और परोपकार में लग जाओ। यह मत भूलो कि यह जिंदगी हमेशा नहीं रहेगी और एक दिन तुम्हें हरेक आँसू का हिसाब देना होगा, जो तुम्हारी वजह से किसी दुःखी इनसान की आँखों से निकले थे। तुम्हें अपने सभी कर्मों का हिसाब एक-न-एक दिन अवश्य ही देना होगा। पर हाँ! यदि तुम बुरे कर्म छोड़कर भले कर्म, अच्छे कर्म करने लग जाओ, दूसरों का भला करने लग जाओ, परोपकार करने लग जाओ तब तुम्हारे मन की मलिनता मिट सकती है, बुरे कर्म करने से जो आत्मग्लानि हुई है, वह मिट सकती है और आत्मसंतोष प्राप्त हो सकता है और तुम्हारी जिंदगी बदल सकती है। तुम्हारे जीवन में सुख-शांति आ सकती है।'' गुरु नानक देव से यह उपदेश सुनकर डाकुओं ने बुरे कर्म, घृणित कर्म करना सचमुच छोड़ दिया और फिर उन सबकी जिंदगी सदा के लिए बदल गई। ❑

एक सुंदर से महल के पीछे एक हवेली खड़ी थी। हवेली के दरवाजे-खिड़कियाँ सब ओर से बंद थे, कहीं से जरा-सी रोशनी अंदर को नहीं जाती थी। एक दिन हवेली महल को ताना देते हुए बोली—''महल महाशय! आपसे ज्यादा अच्छी सामग्री मुझे बनाने में लगी है, तुम्हारी तारीफ करने को तो इतने सारे लोग घूमते हैं, परंतु मेरे पास कोई नहीं आता। ऐसा भेदभाव क्यों?'' महल बोला—''हवेली बहन! तुम जरा अपने खिड़की-दरवाजे खोलो तो तुम्हारे यहाँ भी मिलने वालों का ताँता लगे। जब हृदय खुलेगा, तभी तो प्यार मिलेगा।'' अनुग्रह-अनुदान उन्हें ही मिलते हैं, जो ग्रहणशील होते हैं। जो अपने द्वार बंद करके बैठते हैं, भगवान को उनके दरवाजे पर आकर लौटना पड़ता है।

पर्व विशेष (महाशिवरात्रि)

भगवान शिव के ज्योतिर्लिंग

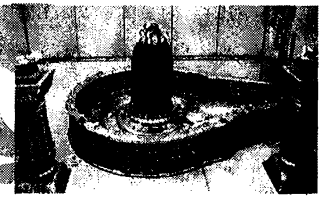

सहस्र नामों से प्रसिद्ध भगवान शिव कभी जन्मे नहीं, वे अजन्मे हैं और देवताओं के भी देव हैं। महाशिवरात्रि भगवान शिव के लिंगरूप में उद्भव के उपलक्ष्य में मनाई जाती है; जिसे पुण्यदायिनी व मुक्ति प्रदान करने वाली रात्रि भी कहा जाता है। भगवान शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में त्र्यंबकेश्वर मंदिर की खास विशिष्टता है; क्योंकि यहाँ मंदिर में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों देव विद्यमान हैं।

महाराष्ट्र के नासिक में स्थित त्र्यंबकेश्वर मंदिर हिंदुओं की श्रद्धा, आस्था एवं विश्वास का केंद्र स्थान है। त्र्यंबकेश्वर मंदिर ब्रह्मगिरी पर्वत शृंखला क्षेत्र में विद्यमान है और इसकी तलहटी पर स्थित है। यह स्थान गोदावरी नदी का उद्गम स्थल भी माना जाता है। त्र्यंबकेश्वर मंदिर के गर्भगृह में भगवान ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश प्रतिष्ठित हैं। इस ज्योतिर्लिंग की यह सबसे बड़ी विशेषता है। भगवान शिव के अन्य सभी ज्योतिर्लिंगों में सिर्फ भगवान शिव विराजित हैं।

गोदावरी नदी के निकट स्थित भगवान शिव का यह ज्योतिर्लिंग त्र्यंबकेश्वर मंदिर काले पत्थरों से सुसज्जित है। इसका स्थापत्य वास्तुशिल्प अद्भुत है। त्र्यंबकेश्वर मंदिर का भव्य-दिव्य परिसर सिंधु-आर्यशैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश करने पर शिवलिंग का केवल अर्घा ही दिखता है। इसमें जल भरा होता है। इस अर्घा के भीतर एक-एक इंच के तीन लिंग हैं। इनको ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का स्वरूप माना जाता है। ब्राह्ममुहूर्त में पूजा-अर्चना के समय अर्घा पर चाँदी का मुकुट सुशोभित किया जाता है। इस मंदिर क्षेत्र के पंचकोस में विशेषताओं एवं विलक्षणताओं का अद्भुत संयोग भी माना जाता है। मान्यता है कि त्र्यंबकेश्वर मंदिर में कालसर्प योग शांति, त्रिपिड विधान, नारायण नागबलि की पूजा-अर्चना विधि-विधान से की जाती है।

श्रद्धालु भक्त इच्छाओं की पूर्ति होने पर पूजन-अर्चना विधि-विधान से करते हैं। प्राचीनकाल में त्र्यंबकेश्वर मंदिर क्षेत्र त्र्यंबक गौतम ऋषि की तपोभूमि थी। गौतम ऋषि ने गोहत्या के पाप से मुक्ति के लिए इस स्थान पर कठोर तप किया था तथा उसकी सफल पूर्णाहुति के अवसर पर भगवान शिव से गंगा को यहाँ अवतरित करने का वरदान माँगा था। इसी के फलस्वरूप दक्षिण की गंगा अर्थात गोदावरी नदी का उद्गम इस क्षेत्र से हुआ। गौतम ऋषि के अनुनय-विनय पर भगवान शिव ने यहाँ विराजमान होना स्वीकार कर लिया था। त्रिनेत्रों वाले भगवान शिव के यहाँ विराजमान होने के कारण इस क्षेत्र को त्र्यंबक कहा गया। त्र्यंबकेश्वर को इस क्षेत्र का राजा-महाराजा कहा एवं माना जाता है। माना जाता है कि प्रत्येक सोमवार को त्र्यंबकेश्वर नगर भ्रमण करते हैं; जिससे प्रजा का हाल जान सकें।

त्र्यंबकेश्वर महाराज के पंचमुखी स्वर्ण मुखौटे को पालकी में रख एक शोभायात्रा इस दिन निकलती है। कुशावर्त तीर्थ स्थित घाट पर स्नान कर वे वापस त्र्यंबकेश्वर मंदिर आते हैं। यह पूर्ण आयोजन त्र्यंबकेश्वर महाराज का राज्याभिषेक माना जाता है। किंवदंती है कि गोदावरी निरंतर विलुप्त होती रहती थीं और इसीलिए गौतम ऋषि ने कुशा से गोदावरी को बंधक बनाया था। यही कारण है कि जिससे कुशातीर्थ के कुंड में हमेशा पानी लबालब भरा रहता है। इस कुंड को कुशातीर्थ के नाम से भी जाना जाता है। कुंभ स्नान के समय शैव अखाड़ा इसी कुंड में शाही स्नान करता है। ब्रह्मगिरी पर्वत पर जाने के लिए सात सौ सीढ़ियों से शीर्ष पर जाना होता है।

भगवान शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में सोमनाथ मंदिर का इसी तरह से विशिष्ट महत्त्व है। गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र के वेरावल बंदरगाह स्थित सोमनाथ मंदिर को प्रथम ज्योतिर्लिंग की मान्यता प्राप्त है। ज्योतिर्लिंग सोमनाथ मंदिर का वास्तुशिल्प भी विशेष है। प्रथम ज्योतिर्लिंग की मान्यता रखने वाले सोमनाथ मंदिर का इतिहास बहुत ही वैभवशाली रहा है। सोमनाथ मंदिर विश्वप्रसिद्ध धार्मिक स्थल एवं शीर्ष पर्यटनस्थल है। ज्योतिर्लिंग सोमनाथ मंदिर का वास्तुशिल्प भी अति विशिष्ट है।

सोमनाथ मंदिर का वास्तुशिल्प चालुक्य शैली एवं कैलाश महामेरू प्रसाद शैली पर आधारित है। इस भव्य-

दिव्य मंदिर का सुंदर वास्तुशिल्प एवं इसकी कलात्मकता गुजरात के कारीगरों के कला कौशल का बयान करती है। मंदिर के मुख्य शिखर की ऊँचाई 15 मीटर है। शीर्ष पर करीब 2.20 मीटर लंबा-चौड़ा झंडे का स्तंभ है। मंदिर की दक्षिण दिशा में समुद्र किनारे के स्तंभ हैं। मंदिर के पिछले हिस्से में प्राचीन मंदिर की मान्यता है। यह माँ पार्वती का मंदिर है। सोमनाथ मंदिर श्रद्धा, आस्था एवं विश्वास का एक अटूट केंद्र है। यह तीर्थ श्राद्ध-तर्पण सहित अन्य सभी शुभ एवं मांगलिक कार्यों के लिए विशेष तौर पर जाना जाता है।

सोमनाथ मंदिर क्षेत्र में श्राद्ध का विशेष महत्त्व होता है। ज्योतिर्लिंग सोमनाथ मंदिर त्रिवेणी महासंगम पर स्थित है। यह त्रिवेणी तीन नदियों हिरण नदी, कपिला नदी एवं सरस्वती नदी का विशाल संगम स्थल है। इस त्रिवेणी में स्नान का भी विशेष महत्त्व माना जाता है। ज्योतिर्लिंग सोमनाथ मंदिर का उल्लेख ऋग्वेद में भी आता है। लोककथाओं के अनुसार इसी स्थान पर भगवान श्रीकृष्ण ने देहत्याग किया था। इस कारण इस क्षेत्र का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

मान्यता है कि सोम अर्थात चंद्र देव ने राजा दक्ष प्रजापति की 27 कन्याओं से विवाह किया था। सोम अपनी सभी पत्नियों से समान प्रेम नहीं करते थे। सोम के इस व्यवहार से क्षुब्ध दक्ष प्रजापति ने उन्हें शाप दिया था कि उनकी कांति क्षीण होगी। अत: सोम ने शिव-आराधना की थी। जिस पर भगवान शिव ने इसी स्थान पर आकर उनके शाप का निवारण किया था। भगवान शिव की स्थापना यहाँ होने से इस स्थान को सोमनाथ मंदिर कहा गया।

भगवान शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में उज्जैन का महाकालेश्वर महादेव मंदिर है। मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में क्षिप्रा नदी के तट पर विद्यमान महाकालेश्वर महादेव का दर्शन अति कल्याणकारी माना जाता है। मान्यता है कि ज्योतिर्लिंग महाकालेश्वर महादेव के दर्शन मात्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है। महाकालेश्वर महादेव के दर्शन मात्र से काल-सर्पयोग के संताप से मुक्ति मिलती है। मान्यता है कि दक्षिणमुखी होने के कारण महाकालेश्वर महादेव मंदिर वास्तुशिल्प का सुंदर आयाम है। गर्भगृह तक पहुँचने के लिए सीढ़ीदार रास्ता है। इसके ठीक ऊपर शिवलिंग स्थापित है। करीब 29 मीटर ऊँचाई वाला महाकालेश्वर महादेव मंदिर श्रद्धालुओं की श्रद्धा, आस्था एवं विश्वास का केंद्र है। मंदिर के सन्निकट जलस्रोत है।

इसे कोटितीर्थ भी कहा जाता है। कोटितीर्थ को भी महादेव का प्रमुख स्थान माना जाता है। सन् 1968 में सिंहस्थ महापर्व के पूर्व मुख्य द्वार की साज-सज्जा एवं विस्तार कराया गया था। महाकालेश्वर महादेव मंदिर का शिखर स्वर्णजड़ित है। मंदिर के शिखरों पर 16 किलो स्वर्ण का आवरण है। मान्यता है कि उज्जैन भारत की कालगणना का केंद्र था। महाकाल उज्जैन के अधिपति आदिदेव माने जाते हैं। उज्जैन को प्राचीनकाल में अवंतिकापुरी भी कहते थे। तांत्रिक परंपरा में दक्षिणमुखी पूजा का विशेष महत्त्व है। महादेव की दक्षिणमुखी पूजा का महत्त्व केवल महाकालेश्वर महादेव को ही प्राप्त है।

भगवान महादेव के इस स्थान में ओंकारेश्वर, महाकाल एवं नागचंद्रेश्वर विद्यमान हैं। मध्य प्रदेश के उज्जैन में धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व के स्थान महाकालेश्वर महादेव के दर्शन पुण्य-प्रताप के लिए श्रेष्ठतम हैं। साथ ही यह क्षेत्र पर्यटन की दृष्टि से भी बेहतरीन है। महाकालेश्वर महादेव मंदिर के आस-पास श्री बड़े गणेश, हरसिद्धि, क्षिप्रा घाट, गोपाल मंदिर, गढ़कालिका देवी, भर्तृहरि गुफा, काल भैरव आदि हैं।

ओंकारेश्वर महादेव शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है। नर्मदा नदी के तट पर स्थित ओंकारेश्वर महादेव का शिवलिंग स्वयंभू प्राकट्य है। मध्य प्रदेश के खंडवा जिले में स्थित इस ज्योतिर्लिंग की खासियत यह है कि यहाँ का शिवलिंग नर्मदा नदी के आगोश से स्वत: प्रकट हुआ है। ओंकारेश्वर नगरी को हिंदुओं के सर्वश्रेष्ठ तीर्थ के तौर पर भी जाना जाता है। ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर महादेव की ख्याति देश-विदेश में है।

विशेषज्ञों के अनुसार देवी अहिल्याबाई होल्कर नित्य मृतिका के 18 सहस्र शिवलिंग तैयार करके पूजन करने के उपरांत नर्मदा नदी में विसर्जित करती थीं। इस पूजा-अर्चना से भगवान शिव प्रसन्न हुए। अहिल्याबाई ने वरदान माँगा कि वे इसी स्थान पर विद्यमान हों। तभी से इस नगरी को ओंकार मांधाता की ख्याति मिली। ओंकार शब्द का उच्चारण सर्वप्रथम सृष्टिकर्त्ता विधाता के श्रीमुख से हुआ। वेद-पाठ भी इसके उच्चारण के बिना अधूरा माना जाता है।

ओंकार का भौतिक विग्रह ओंकार क्षेत्र है। इस क्षेत्र में 68 तीर्थ हैं। मान्यता है कि हिंदुओं के 33 करोड़ देवता इसी क्षेत्र में निवास करते हैं। मान्यता है कि कोई भी तीर्थ कर लें, लेकिन यदि ओंकारेश्वर महादेव के दर्शन नहीं किए तो समूची तीर्थयात्रा आधी-अधूरी मानी जाएगी। शास्त्र मान्यता यह भी है कि यमुना नदी में 15 दिन स्नान तथा गंगा नदी में सात दिन स्नान करने से जिस पुण्यप्रताप एवं फल की प्राप्ति होती है—नर्मदा नदी के दर्शन मात्र से उक्त पुण्य-प्रताप एवं फल की प्राप्ति होती है।

नर्मदा नदी को कोटितीर्थ एवं चक्रतीर्थ भी कहा जाता है। यहीं स्नान कर श्रद्धालु सीढ़ी चढ़ करके ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर महादेव के दर्शन करने के लिए जाते हैं। महादेव मंदिर तट पर ही कुछ ऊँचाई पर स्थित है। ओंकारेश्वर महादेव का शिवलिंग अनगढ़ है। शिवलिंग शिखर पर ठीक नीचे स्थित न होकर यह किनारे पर स्थित है। शिवलिंग के चारों ओर हमेशा जल भरा रहता है। महादेव के इस मंदिर का प्रवेशद्वार छोटा-सा है, जिससे प्रतीत होता है कि जैसे भगवान की गुफा में प्रवेश कर रहे हों। निकट ही माता पार्वती के भी दर्शन होते हैं। ओंकारेश्वर महादेव के दर्शन कर सीढ़ी से चढ़कर ऊपर जाने पर महाकालेश्वर शिवलिंग के दर्शन होते हैं। यह शिवलिंग शिखर के ठीक नीचे स्थित है।

भगवान शिव के ज्योतिर्लिंगों का दर्शन पापनाशक एवं मोक्षप्रदाता माना जाता है। शिवलिंग साकार होकर भी निराकार का प्रतीक है। शिवलिंग-उपासना एवं ध्यान से परमात्मा के निराकार स्वरूप की प्राप्ति होती है। इस महाशिवरात्रि पर्व पर भगवान महादेव के इन दोनों स्वरूपों की पूजा-अर्चना निश्चित रूप से अत्यधिक लाभ प्रदान करने वाली है। ❑

कन्नौज के आचारच्युत और जातिच्युत ब्राह्मण अजामिल ने कुलटा दासी को पत्नी बना लिया था। किसी भी विधि से धन कमाना और उस दासी को संतुष्ट करना ही उसका काम हो गया था। माता-पिता और अपनी साध्वी पत्नी के प्रति कर्त्तव्यों को वह पूर्णतया विस्मृत कर चुका था। वह म्लेच्छों की भाँति जीवन जी रहा था। अजामिल की कुलटा दासी से कई संतानें हुईं। किसी पुण्यवश उसने अपने सबसे छोटे पुत्र का नाम नारायण रखा।

अजामिल का उस पर अपार मोह था। इसी मोहग्रस्त दशा में अजामिल का अंतिम समय आ गया और यमदूत उसे लेने पहुँचे। मोहवश वह अपने प्रिय पुत्र को पुकारने लगा—नारायण! नारायण!! अनजाने में लिए गए इस नाम से प्रसन्न होकर श्रीनारायण के पार्षद तुरंत दौड़ पड़े और उन्होंने यमदूतों को वहाँ से भगा दिया। उनके जाने पर अजामिल की चेतना सजग हुई।

इस घटना से उसका हृदय परिवर्तित हो गया। उसकी मोहासक्ति का सर्वथा नाश हो गया। अपने पापकर्मों के लिए उसके मन में घोर प्रायश्चित की भावना जाग्रत हो गई। वह घर छोड़कर गंगा किनारे जा बसा और भगवन्नाम के जप में लग गया। अंतिम समय आने पर समस्त पापों से मुक्त होकर भगवद्धाम को प्राप्त हुआ।

सर्वधर्म समभाव का मंत्र—गायत्री महामंत्र

भारतीय आर्ष ग्रंथों में तो गायत्री महामंत्र की महत्ता मुक्त कंठ से गायी ही गई है, अन्य देशों और अन्य संप्रदायों के आध्यात्मिक साधकों, विचारकों ने भी उसे अद्भुत तथा अनुपम कहा है। मंत्रों की विशेषता उनके शाब्दिक गठन से भी होती है और उनमें सन्निहित भावों से भी। गायत्री मंत्र के बारे में भी सिद्ध साधकों के उसी प्रकार के दिव्य अनुभव हैं।

थियोसॉफिकल सोसाइटी विश्वमान्य आध्यात्मिक संगठन है। सवा सौ से अधिक देशों में उसका समर्थन तंत्र फैला हुआ है। उक्त संगठन के सम्मेलन जहाँ भी होते हैं, उनका शुभारंभ भारतीय परंपरा के अनुरूप विशेष सामूहिक पूजा प्रक्रिया के साथ किया जाता है। उस पूजनपद्धति को 'भारत समाजपद्धति' कहा जाता है। उसकी एक छोटी पुस्तिका इसी नाम से प्रकाशित है, जिसके आधार पर उनके सभी साधक सामूहिक पूजन में भाग लेते हैं। उक्त पुस्तक की भूमिका में पादरी लैडबिटर ने गायत्री मंत्र के बारे में अपने महत्त्वपूर्ण अनुभव प्रकाशित किए हैं।

श्री लैडबिटर ऑकल्टिस्ट (दिव्यदृष्टि प्राप्त साधक) थे। वे विभिन्न आध्यात्मिक प्रयोगों से होने वाले सूक्ष्मजगत के प्रभावों, प्रतिक्रियाओं को अनुभव कर लेते थे। उनके अनुभव का सार-संक्षेप कुछ इस प्रकार है—'गायत्री मंत्र के भावपूर्ण जप का प्रभाव सूक्ष्मजगत में तत्काल परिलक्षित होता है। अनंत आकाश से दिव्य ऊर्जा का किरण पुंज साधक के शरीर पर अवतरित होता दिखता है। वह दिव्यप्रकाश साधक के सामने की ओर शंकु (कोनिकल) आकार में एक प्रकाशमान बिंदु पर केंद्रित हो जाता है। उसका प्रभावक्षेत्र साधक के स्तर के अनुरूप कम अथवा अधिक होता है। यह प्रकाशबिंदु सद्भाव एवं सद्विचार संचारक होता है। उसके प्रभावक्षेत्र में यदि कोई व्यक्ति आ जाता है तो वह प्रकाशपुंज मुड़कर उस व्यक्ति के हृदय और मस्तिष्क को स्पर्श करता है। यदि गायत्री मंत्र का भाषानुवाद किसी भी भाव में किया जाए तो उसके जप से भी इसी प्रकार का प्रभाव परिलक्षित होता है। संस्कृत भाषा में मूलमंत्र के प्रभाव से उस प्रकाशपुंज के चारों ओर प्रकाश की कलात्मक संरचना विशेष रूप से दिखती है।'

श्री लैडबिटर की यह अनुभूति भारतीय ऋषि-मनीषियों के द्वारा वर्णित गायत्री महामंत्र की महत्ता के अनुरूप है। इस बात से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि मंत्र का प्रभाव साधक की भावना के अनुसार ही प्रकट होता है। भाषा बदलने से कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। विश्व में सभी भाषाओं और सभी मतों के साधक इस मंत्र का लाभ सहजता से उठा सकते हैं। गायत्री मंत्र के भाव साधक के हृदय में समाहित होते हैं।

गायत्री मंत्र त्रिपदा अर्थात तीन चरण वाला है—**(1) 'तत्सवितुर्वरेण्यं', (2) 'भर्गो देवस्य धीमहि'** और **(3) 'धियो यो नः प्रचोदयात्'**। **'ॐ भूर्भुवः स्वः'** को उसका शीर्ष कहा जाता है। उसके मुख्य भाव इस प्रकार समझे जा सकते हैं—परमात्मा सर्वव्यापी है, उसे सबके जन्मदाता (माता-पिता, सविता) के रूप में अनुभव किया जाए। वह सविता ही हम सबके लिए वरण योग्य (श्रेष्ठ, सराहनीय, हितकारी) है। उसके भर्ग (दोषों से मुक्त करने वाले पवित्र तेज) को अपने अंदर धारण करें। उसी की भक्ति करें। वह हमें सन्मार्ग पर प्रेरित करे। उसी की इच्छा के अनुरूप हम सब का जीवन चले।

सत्य तो सत्य है। किसी भी मार्ग पर श्रद्धापूर्वक चलने वाले साधक अंततः सत्य की अनुभूति करते ही हैं। सांप्रदायिक पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर विवेकपूर्वक अध्ययन करने पर गायत्री का तत्त्वज्ञान और उसके सत्परिणामों के प्रमाण अन्य धर्म-संप्रदायों में भी मिल जाते हैं। यहाँ तक कि ईसाई और इस्लाम धर्मों में भी गायत्री के तत्त्वज्ञान पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

ईसाई मत का सर्वमान्य ग्रंथ बाइबिल है। इसमें सबसे श्रेष्ठ प्रार्थना के रूप में ईश्वर की प्रार्थना (गॉड्स प्रेयर) को मान्यता प्राप्त है। बाइबिल के अध्याय 'मैथ्यू' (6.9-13) में यह प्रार्थना है। हिंदी में उसके प्रारंभिक चरण इस प्रकार हैं—ओ स्वर्ग में रहने वाले हमारे पिता! आपका नाम सराहा-

सम्मानित किया जाए। सर्वत्र आपका साम्राज्य आए। आपकी इच्छा पृथ्वी पर भी उसी प्रकार चले, जैसे स्वर्ग में चलती है।

उक्त भाव गायत्री मंत्र के ही अनुरूप हैं। ईश्वर को पिता, जन्मदाता-सविता के रूप में याद किया गया है। उन्हें सराहनीय, श्रेष्ठ (वरेण्य) माना गया है। उनका साम्राज्य उनके तेज-प्रभाव को अंगीकार करने का भाव (दिव्य भर्ग धारण करने) का द्योतक है। अपनी इच्छा को छोड़कर प्रभु की इच्छा के अनुसार विश्व-व्यवस्था बने, यह चरण गायत्री मंत्र के **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** पद के अनुसार ही है। गायत्री मंत्र की तरह इसमें भी प्रार्थना व्यक्ति विशेष अर्थात केवल एक व्यक्ति के लिए नहीं, वरन संपूर्ण समष्टि के लिए की गई है।

गायत्री मंत्र के प्रभाव के बारे में अथर्ववेद का मंत्र है—**स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी, द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।** इस मंत्र का भावार्थ यह है कि वेदमाता गायत्री दिव्य प्रेरणा एवं पवित्रता देने वाली हैं। ये साधक को इस लोक में श्रेष्ठ आयु, सभी तरह की लौकिक संपन्नता तथा पवित्र यश प्रदान करती हैं। आयु पूर्ण होने पर ये ब्रह्मलोक—सद्गति का मार्ग प्रशस्त कर देती हैं।

भारत में तो तमाम ऋषियों-साधकों के जीवन में गायत्री-साधना के उक्त लाभ मिलने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। बाइबिल के तीसरे अध्याय में भी ऐसी एक कथा मिलती है। कथा है कि ईश्वर ने राजा सोलोमन को अद्भुत वरदान दिया। ईश्वरभक्त राजा डेविड ने अपने ईश्वरभक्त पुत्र सोलोमन को राज्य सौंप दिया। सोलोमन ने पवित्र तीर्थ में जाकर प्रभु के नाम पर आहुतियाँ (बर्न्ट ऑफरिंग्स) दीं। उसकी निष्ठा से प्रभु प्रसन्न हुए और प्रकट होकर इच्छित वरदान माँगने को कहा।

सोलोमन ने कहा—''हे प्रभु! आपने अपने सेवक, मेरे पिता पर विशेष कृपा की इसलिए वे हृदय की शुद्धता, सत्य और सज्जनता के मार्ग पर चले। आपने उन पर एक विशेष कृपा यह की कि उन्हें राज्य सँभालने योग्य एक पुत्र (मुझे) दिया। हे प्रभु! आपने मेरे पिता की जगह मुझे राजा भी बना दिया, लेकिन मैं तो एक अबोध बालक जैसा हूँ, जो सामान्य व्यवहार भी नहीं जानता। आपका यह सेवक आपके द्वारा चुने गए अगणित महान व्यक्तियों के बीच रह रहा है। इसलिए हे प्रभु! आप मुझे एक संवेदनशील (सद्भावनायुक्त) हृदय दें, ताकि मैं लोगों की भावनाओं को समझ सकूँ। साथ ही मुझे भले-बुरे में अंतर करने में समर्थ सद्विवेक भी प्रदान करें, ताकि मैं आपके द्वारा चुने गए महान व्यक्तियों के साथ न्याय कर सकूँ।''

इस प्रकार श्रेष्ठ आशीर्वाद माँगने के कारण प्रभु सोलोमन पर प्रसन्न हुए। प्रभु ने कहा—''तुमने न तो अपने लिए लंबी उम्र और धन-दौलत की माँग की और न अपने शत्रुओं के अहित की कामना की, बल्कि तुमने अपने लिए समझदारी और न्याय करने की क्षमता माँगी, इसलिए मैं प्रसन्न हूँ। सुनो! मैं तुम्हारे कहे अनुसार तुम्हें सद्विवेक और संवेदनशीलता तो देता ही हूँ, इसी के साथ जो तुमने नहीं माँगे; वो दोनों लोकों की संपत्ति और सम्मान भी तुम्हें देता हूँ। अगर तुम अपने पिता डेविड की तरह मेरे रास्ते पर बढ़ते रहे, मेरे रास्ते के अनुसार चले और मेरे निर्देशों का पालन करते रहे तो मैं तुम्हारी आयु भी बढ़ा दूँगा।''

कथा से स्पष्ट है कि विश्वसृजेता प्रभु (परमपिता या आद्यशक्ति) का विशेष अनुग्रह सद्भावना एवं सद्विवेक प्राप्त करके लोकहित की कामना करने वालों को प्राप्त होता है। उसे वे बिना माँगे ही दोनों लोकों (पृथ्वी और स्वर्ग) की श्रेष्ठ विभूतियाँ प्रसन्नतापूर्वक प्रदान करते हैं। वेद के मंत्रद्रष्टा और बाइबिल के ईश्वरीय संदेशवाहक दोनों के भाव एक जैसे ही हैं। उनमें देश, काल और परिस्थिति के अनुसार केवल भाषा का अंतर ही दिखाई देता है।

इस्लाम का सर्वमान्य ग्रंथ 'कुरान शरीफ' है। वेदों की तरह 'कुरान' को भी ईश्वर द्वारा प्रेषित ज्ञान माना जाता है। सनातन-वैदिक मत में गायत्री महामंत्र को जिस प्रकार महत्ता दी गई है, उसी प्रकार इस्लाम में 'सूरह फातिहा' अथवा 'अल हम्द शरीफ' का महत्त्व माना गया है।

संत विनोबा भावे ने कुरान के अनुसार—'रुहल कुरान' अर्थात 'कुरान सार' में सूरह फातिहा को कुरान का मंगलाचरण कहा है। इस्लाम की हर महत्त्वपूर्ण इबादत में 'फातिहा' को शामिल किया जाता है। गायत्री मंत्र को वेदमाता की संज्ञा दी गई है तो 'सूरह फातिहा' को भी 'उम्मुल किताब' (ज्ञान की माँ) कहा गया है।

डॉ. मुहम्मद हनीफ खाँ शास्त्री ने दरभंगा, बिहार के कामेश्वर सिंह दरभंगा विश्वविद्यालय से 'महामंत्र गायत्री और सूरह फातिहा' विषय पर संस्कृत में

पी-एच.डी.(Ph.D.) की है। इसी नाम से उनकी पुस्तक हिंदी में भी प्रकाशित हुई है। उसमें उन्होंने लिखा है-अब जहाँ तक सूरह फातिहा की बात है, तो वह गायत्री मंत्र से अलग नहीं है। यदि द्वेषरहित एवं उदारतापूर्वक इसके वाक्यांशों पर विचार किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि 'सूरह फातिहा' सूत्र रूप गायत्री मंत्र की व्याख्यास्वरूप है। डॉ. हनीफ शास्त्री ने विस्तार से दोनों मंत्रों के विभिन्न चरणों की समीक्षा करके उन्हें एकदूसरे के अनुरूप सिद्ध किया है। संक्षेप में इस तथ्य को यहाँ स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। सूरह फातिहा अर्थसहित इस प्रकार है—

विस्मिल्लार्रहमानर्रहीम—शुरू करते हैं अल्लाह के नाम से, जो अत्यंत दयालु और कृपालु हैं। इस सूत्र को गायत्री महामंत्र के शीर्ष '**ॐ भूर्भुवः स्वः**' के अनुरूप माना जाता है। '**ॐ**' अक्षर परमेश्वर का बोधक है। उसे गुणों के रूप में प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप कहा गया है। इस्लाम ने उसे दयालु और कृपालु के रूप में याद करने की अपील की है। **अलहम्द लिल्लाहरब्बिल आलमीन**—अर्थात सारी प्रशंसाएँ-स्तुतियाँ अल्लाह के लिए हैं, जो सारे ब्रह्मांड का पालन-पोषण करने वाले हैं। यह सूत्र गायत्री मंत्र के प्रथम चरण '**तत्सवितुर्वरेण्यं**' के अनुरूप है। सविता—सबका पालन-पोषण करने वाला परमात्मा ही वरणीय-प्रशंसनीय है।

अर्रहमानर्रहीम मालिकीयोमिद्दीन—वह रहमतों (दया-कृपा) की बारिश करने वाला और अंतिम न्याय करने वाला है। इसे गायत्री मंत्र के दूसरे चरण '**भर्गो देवस्य धीमहि**' के समकक्ष माना जाता है। दयालु देव के भर्ग—तेज, उसकी सामर्थ्य का ही ध्यान किया जाए। वही हमारे पापों को नष्ट करके हमारे अंदर देवत्व को विकसित कर सकता है। **इय्याक्रनअबुदु व इय्याक नस्तईन**—हम तेरी ही भक्ति करते हैं और तुझसे ही मदद चाहते हैं। यह सूत्र भी ऊपर वाले सूत्र का ही पूरक है। उसी दिव्य तेजसंपन्न की शरण में जाकर उसी से उम्मीद रखने वाले ही सच्चे भक्त कहला सकते हैं। उससे हम क्या उम्मीद, आशा-अपेक्षा-प्रार्थना करें?

इहिदि नस्सिरात्तलमुस्तकीम—अर्थात हे परमेश्वर! हमको सीधी राह पर चला। यह सूत्र गायत्री मंत्र के तीसरे चरण '**धियो यो नः प्रचोदयात्**' के समानार्थक है। मनुष्य संसार से प्रभावित होकर उसी से प्रेरणा लेने लगता है और भटक जाता है। ईश्वर हमें भटकने न दे। हमें प्रगति और सद्गति के परम लक्ष्य की तरफ सीधी राह पर चला दे—यही प्रार्थना सच्चे भाव से की जानी चाहिए। इस सूत्र में भी 'मैं' की जगह हम सबके लिए प्रार्थना की गई है।

सूरह फातिहा के इन सूत्रों में गायत्री महामंत्र का पूरा भाव प्रकारांतर से समाविष्ट हो जाता है। उसके अगले दो चरण और हैं, जो उस सीधी राह को भी स्पष्ट करने के लिए कहे गए हैं। **सिरातल्जीन अन्अम्त अलौहिम**—अर्थात हे प्रभु! हमें उन लोगों की राह पर चला, जिस पर चलने वालों पर तू अपने असीम अनुदान बरसाता है। **गैरिल-मगजूबि अलैहिम तलज्जवाल्लीनि**—अर्थात उन लोगों की राह पर मत चला, जो भटक गए हैं और तेरे कोप के भाजन हुए हैं।

सूरह फातिहा के सूत्रों को समझ लेने पर उसे गायत्री मंत्र का पूरक मान लेने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। सूरह फातिहा का कलेवर गायत्री मंत्र से कुछ बड़ा इसलिए हो गया है कि देश, काल के अनुसार मूल भावों को थोड़ा अधिक स्पष्ट करने की जरूरत समझी गई। पूरी बात को समझकर जप या लेखन-साधना के लिए सीमित सूत्रों (सूत्र 3,4,5 अर्रहमान से लेकर मुस्तक्रीम तक) का प्रयोग किया जा सकता है।

इस्लाम के तमाम विद्वान गायत्री मंत्र के भावों से प्रभावित हुए और उन्होंने उसके भावों को उर्दू कविता के रूप में व्यक्त किया है। 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तां हमारा' गीत के रचनाकार अल्लामा मुहम्मद इकबाल की ग्रंथावली 'कुल्लियात इकबाल' के पृष्ठ क्रमांक 20 पर गायत्री शीर्षक की रचना प्रकाशित है। उर्दू पत्रिका 'हमारी जुबान' के सन् 1994 के मई अंक में पृष्ठ क्रमांक 6 पर 'साबिर अबोहरी' द्वारा किया गया गायत्री मंत्र का उर्दू पद्यानुवाद प्रकाशित हुआ था। उन्होंने भी इसे सूरह फातिहा से मिलता-जुलता कहा है।

उक्त आधार पर मनुष्य मात्र के लिए उज्ज्वल भविष्य की कामना से साधना-प्रार्थना करने के लिए सभी को आसानी से सहमत किया जा सकता है। इस प्रकार युग निर्माण अभियान की समर्थ इकाइयाँ विश्व के हर कोने में गठित और सक्रिय की जा सकती हैं। इस तरह गायत्री महामंत्र सर्वधर्म समभाव का मंत्र है। ❑

अनाथों के नाथ हैं जगन्नाथ

श्यामलदास द्वारका से दस कोस की दूरी पर स्थित एक गाँव में रहते थे। वे मात्र दस वर्ष के थे, जब उनके माता-पिता स्वर्ग सिधार गए थे। अपने पूर्वजन्म के पुण्य संस्कारों के कारण उन्हें ईश्वर में पूर्ण विश्वास था। एक बार अपने गाँव में आयोजित सत्संग में वे भी बैठे थे। सत्संग में संत महाराज कह रहे थे कि भगवान अनाथों के नाथ हैं; क्योंकि वे जगत के नाथ हैं अर्थात जगन्नाथ हैं। वे परम दयालु हैं। जो कोई भी निश्छल हृदय से उन्हें पुकारता है, वे उसकी अवश्य सुनते हैं।

भगवान अनाथों के नाथ हैं—यह सुनकर श्यामलदास की आँखों में आँसू भर आए, क्योंकि माता-पिता के न होने के कारण वे सदा यही सोचते कि मैं कितना अभागा हूँ कि मेरे माता-पिता मुझे बचपन में ही छोड़कर चले गए। मैं भी तो अनाथ ही हूँ। इस जीवन में मेरा कोई आसरा नहीं, सहारा नहीं। तब क्या भगवान मुझ जैसे अनाथ के नाथ हो सकेंगे? क्या वे कभी मेरी सुधि ले पाएँगे। अक्सर उनके मन में ऐसे विचार आते रहते थे। पर उस दिन संत महाराज के मुख से यह सुनकर कि भगवान अनाथों के नाथ हैं, उनका ईश्वर के प्रति विश्वास और भी दृढ़ हो गया।

संत महाराज से मंत्र-दीक्षा लेकर श्यामलदास नित्य भगवान की पूजा-उपासना करने लगे। गले में तुलसी की कंठीमाला धारण कर वे नित्य 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र का जप करने लगे। वे प्रत्येक एकादशी को व्रत-उपवास करते, विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करते।

उनकी ईश्वरभक्ति कोई औपचारिकता, दिखावा या चिह्न-पूजा व कर्मकांडीय आडंबर भर नहीं थी। वे अपने गुरु के कहे अनुसार भगवान की प्रतिमा की पूजा के साथ-साथ इस अखिल विश्व-ब्रह्मांड को साक्षात् ईश्वर का रूप मानकर समाज की सेवा भी करने लगे।

वे अपने खेत में फसल उगाते और अपने उपयोग के बाद जो भी अन्न बच जाता, उसे अपने गाँव के जरूरतमंद लोगों में बाँट दिया करते। वे गाँव के सभी लोगों को सदा ही भगवद्दृष्टि से देखते और उनकी सेवा को भी भगवान वासुदेव की ही सेवा-पूजा मानते। गाँव की साफ-सफाई हो, वृक्षारोपण करना हो, तालाब की सफाई करवानी हो, किसी के विवाह की तैयारी में सेवा-सहयोग करना हो, बीमार लोगों की सेवा-सहायता करनी हो तो वे इन सभी कार्यों में हमेशा बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे।

इन सभी सेवाकार्यों को करते हुए उन्हें ऐसा लगता था मानो वे इन कार्यों से भी भगवान वासुदेव की ही पूजा कर रहे हों। वे सोचते थे कि ये सभी सेवाकार्य भगवान वासुदेव के ही तो हैं। अत: मैं जो भी कर रहा हूँ, भगवान वासुदेव के लिए ही कर रहा हूँ। उनके सेवाकार्य से गाँव के लोगों को भी सेवाकार्य करने की प्रेरणा मिलने लगी और सच कहें तो वह ईश्वरभक्ति भी क्या, जो हमारे व्यवहार में दिखाई न दे, जो हमारे कर्म में दिखाई न दे।

हमारा ऐसा धार्मिक-आध्यात्मिक होना भी क्या जो हमारे जीवन में, चिंतन में, व्यवहार में दिखाई न दे। सच यह भी है कि चिंतन, चरित्र और व्यवहार में भक्ति तभी दिखाई पड़ती है, जब भक्ति मात्र आडंबर या कर्मकांडीय प्रवंचना मात्र न होकर भक्त के हृदय में भगवान को प्रत्यक्ष अनुभव करने की प्यास और पुकार बनकर उतरती है।

श्यामलदास की भक्ति में भी ईश्वर को पाने की, उन्हें अपने हृदय में अनुभव करने की सच्ची प्यास व तड़प थी। इसलिए जब वे ब्राह्ममुहूर्त में अपने आराध्य का नाम स्मरण करते, मंत्रजप करते तो उनके द्वारा किया गया मंत्रजप कुछ शब्दों का उच्चारण मात्र बनकर नहीं रहता था, बल्कि मंत्रजप करते हुए वे उस मंत्र के तत्त्वदर्शन में समाहित हो जाया करते थे।

इससे उस मंत्र का एक-एक शब्द जुड़कर भगवान वासुदेव के दिव्यस्वरूप में परिवर्तित हो जाता जिससे श्यामलदास मंत्रजप करते हुए भगवान वासुदेव के दिव्य स्वरूप का ध्यान करते-करते उसमें डूब जाते और अपना बाह्यज्ञान खो बैठते।

ध्यान में भगवान वासुदेव के दिव्य स्वरूप का दर्शन करते ही उनका रोम-रोम पुलकित होने लगता। वे जब भगवान की स्तुति करते तो स्तुति में वर्णित भगवान के दिव्य स्वरूप में खो जाते, भगवान के दिव्य गुणों का बार-बार चिंतन-स्मरण करते। वे जब भगवान की प्रतिमा की पूजा करते तो उन्हें ऐसा महसूस होता मानो विश्वरूप भगवान स्वयं प्रतिमा के रूप में प्रकट हुए हों। वे उनके द्वारा अर्पित भोग-सामग्री को सचमुच ग्रहण कर रहे हों। कोई भी कार्य करते हुए उन्हें ऐसा लगता कि सर्वज्ञ, सर्वव्यापी भगवान हर जगह उपस्थित हैं और वे मेरे द्वारा किए जा रहे कर्मों को अपनी आँखों से देख रहे हैं। ऐसी भावना रखने के कारण उनसे भूले से भी कोई भूल नहीं होती थी। उन्हें लगता कि कोई बुरा कर्म कर लेने के बाद भला भगवान के पास बैठकर मैं उनसे अपनी आँखें कैसे मिला पाऊँगा? इसलिए वे अपने छोटे-बड़े हर कार्य के प्रति बड़े सावधान व सतर्क रहा करते थे।

इस तरह श्यामलदास जीवनभर भगवान की सच्ची उपासना व सेवा करते रहे। इससे उनका मन पूर्णत: पवित्र हो गया। अब तो वे जहाँ कहीं भी बैठकर भगवान का ध्यान करते तब वे तुरंत ही ध्यान में गहरे उतर जाते। इसी मनोदशा व भावदशा में एक दिन वे जन्माष्टमी के अवसर पर भगवान का दर्शन करने द्वारका पहुँचे। कोसों की लंबी पदयात्रा व उपवास के कारण वे काफी थक चुके थे। ब्राह्ममुहूर्त में भगवान द्वारकाधीश का दर्शन कर वे रोमांचित हो उठे। दिनभर वे उसी भावदशा में डूबे रहे, खाने-पीने की कोई सुधि न रही।

मंदिर से बाहर निकलकर समुद्र के किनारे एक शिला पर लेटते ही वे गहरी निद्रा में चले गए। निद्रा में उन्होंने एक दिव्य स्वप्न देखा। उन्होंने देखा कि भगवान वासुदेव अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट होकर उन्हें दर्शन दे रहे हैं और कह रहे हैं—"पुत्र श्यामल! मैं तुम्हारी सच्ची सेवाभक्ति से प्रसन्न हूँ। बोलो तुम्हें क्या चाहिए वत्स।" भगवान की दिव्य वाणी सुनकर उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा। वे फूट-फूटकर रोने लगे, भगवान के चरण पकड़कर बिलख-बिलखकर रोने लगे और बोले—"भगवन्! आप मुझ अनाथ के नाथ बन जाइए। मैं आपको कभी भूलूँ नहीं, ऐसी कृपा कीजिए।" भगवान तथास्तु कहते हुए अंतर्धान हो गए।

सुबह ब्राह्ममुहूर्त में जागकर पुन: भगवान द्वारकाधीश के दर्शन कर वे गाँव के लिए प्रस्थान कर गए। रास्ते भर स्वप्न में दिखे भगवान विष्णु के चतुर्भुज रूप का ध्यान करते-करते वे आनंदित होते रहे और तब से आजीवन उसी भावदशा में रहे। सचमुच अनाथों के नाथ हैं भगवान जगन्नाथ। ❑

जीवन होम देने वाले कई ऐसे वीर क्रांतिकारी हुए हैं, जिन्होंने भारत के गौरव को ऊँचाइयों तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। रांची के तिहतु ग्राम में एक आदिवासी परिवार में जन्मे बिरसा मुंडा का नाम भी उन महान विभूतियों में लिया जा सकता है।

19 वर्ष की युवा अवस्था में उन्होंने अँगरेजों के विरुद्ध लगान माफी के लिए आंदोलन प्रारंभ किया और इसी कारण उन्हें हजारीबाग जेल में डाल दिया गया। बिरसा 25 वर्ष की छोटी उम्र में ही इस संसार से विदा हो गए, पर अकालपीड़ित किसानों के हितों और देशवासियों के गौरव की रक्षा के लिए उन्होंने जो संघर्ष किया, उसके लिए उन्हें झारखंड निवासी आज भी 'धरती बाबा' के नाम से पुकारते हैं। भारतीय स्वतंत्रता की कहानी ऐसे ही वीर नौजवानों की कहानी है।

जल ही जीवन है

'जल ही जीवन है'—ऐसा कहते हुए हम थकते नहीं, मगर जल बचाने के लिए कुछ करते भी नहीं। शायद यह सोचकर चुप बैठ जाते हैं कि हमारा पड़ोसी जल बचाएगा, हमें कुछ करने की क्या जरूरत है। हमारी यही नकारात्मक सोच हमें जल संकट की ओर ले जा रही है। जल संरक्षण आवश्यक है। देश में पानी की समस्या से जुड़ी चुनौती बड़ी गहरी है। स्वच्छता आंदोलन की तरह 'जल संरक्षण' आंदोलन चलाने की भी जरूरत है। जल संरक्षण के लिए एक जन आंदोलन की शुरुआत हमें करनी चाहिए।

देश में पानी के संरक्षण के लिए जो पारंपरिक तौर-तरीके सदियों से उपयोग में लाए जा रहे हैं, उन्हें साझा करने का समय अब आ गया है। एक वह भी समय था—जब तालाब, बावड़ियाँ और कुएँ ही हमारे जल के स्रोत थे। वे राज्य या शासन के आसरे न होकर जनता के आसरे थे। उनका रखरखाव भी जनता ही करती थी, मगर जब से पानी का जिम्मा सरकार ने सँभाला है और हम राज्याश्रित हो गए तब से अपने परंपरागत स्रोतों को हम भूल बैठे, जिसका नतीजा यह निकला कि आबादी बढ़ती गई और जल घटता गया।

वैश्विक संस्थानों की लगातार चेतावनी देने का भी लोगों पर कोई असर नहीं पड़ा है। विभिन्न संगठनों की जल संरक्षण संबंधी रिपोर्टों में स्पष्ट रूप से इस सत्य को कहा गया है कि भूगर्भ में अब पानी शेष नहीं रहा है और वर्षा का पानी सहेजने में हम नाकारा साबित हुए हैं। विशेषकर भारत में पानी के प्रति घोर लापरवाही का परिणाम आम आदमी को शीघ्र ही भुगतना होगा।

यू.एन. वाटर एवं इंटरनेशनल फंड फॉर एग्रीकल्चर डेवलपमेंट के अनुसार आँकड़े बताते हैं कि प्राकृतिक पर्यावरण के क्षरण और जल संसाधनों पर दबाव इसी तरह बना रहा तो सन् 2050 तक विश्व का 45 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद और 40 प्रतिशत खाद्यान्न बुरी तरह से खतरे की सीमा में आ जाएँगे। गरीब और वंचित तबके इससे बुरी तरह प्रभावित होंगे। देश इस समय भीषण जल संकट से गुजर रहा है और इस आसन्न संकट पर जल्द काबू नहीं पाया गया तो हालात बदतर होने की संभावना है।

भारत अब तक के सबसे बड़े जल संकट से जूझ रहा है। देश के करीब 60 करोड़ लोग पानी की कमी का सामना कर रहे हैं। करीब 75 प्रतिशत घरों में पीने का स्वच्छ पानी उपलब्ध नहीं है। साथ ही देश में करीब 70 प्रतिशत पानी पीने लायक नहीं है। साफ और सुरक्षित पानी नहीं मिलने की वजह से हर साल करीब दो लाख लोगों की मौत हो जाती है।

जल जीवन का सबसे आवश्यक घटक है और जीविका के लिए महत्त्वपूर्ण भी है। यह समुद्र, नदी, तालाब, पोखर, कुएँ, नहर इत्यादि में पाया जाता है। हमारे दैनिक जीवन में जल का बहुत महत्त्व है। हमारा जीवन तो इसी पर निर्भर है। यह पाचन-कार्य करने के लिए शरीर में मदद करता है और हमारे शरीर के तापमान को नियंत्रित करता है। यह हमारे जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह हमारे जीवन की गुणवत्ता निर्धारित करने में एक महत्त्वपूर्ण घटक है और सार्वभौम है।

जल वनस्पति एवं प्राणियों के जीवन का आधार है। उसी से हम मनुष्यों, पशुओं एवं वृक्षों को जीवन मिलता है। भारत नदियों का देश कहा जाता है। पहले जमाने में गंगाजल वर्षों तक बोतलों, डिब्बों में बंद रहने पर भी खराब नहीं हुआ करता था, परंतु आज जल-प्रदूषण के कारण अनेक स्थानों पर गंगा-यमुना जैसी पवित्र नदियों का जल भी छूने योग्य नहीं रह गया है।

सामाजिक हस्तियों से जल संरक्षण कार्यों में योगदान की अपील की आवश्यकता है। हम अपने परंपरागत जल-स्रोतों की सुध-बुध लें, उनका जीर्णोद्धार कराएँ, ताकि पानी की एक-एक बूँद का सदुपयोग हो सके। आवश्यकता इस बात की है कि हम जल के महत्त्व को समझें और एक-एक बूँद पानी का संरक्षण करें, तभी लोगों की प्यास बुझाई जा सकेगी। तभी 'जल ही जीवन है' का सूत्र जीवंत हो पाएगा। ❑

वायु प्रदूषण का बढ़ता संकट

दुनिया में अब वायु प्रदूषण खतरनाक स्थिति में पहुँच गया है। पहले हम प्राकृतिक संसाधनों, यथा—जल, मृदा, वन इत्यादि को लेकर चिंतित थे, पर अब दूषित होती हवा उससे भी बड़ी चिंता का विषय बन गई है और आज यह सबसे बड़े पर्यावरण संकट के रूप में हमारे बीच में है।

जल की आवश्यकता तो हमें कुछ समय के अंतराल पर मालूम होती है तो वहीं भोजन भी दिन में दो-तीन बार ही ग्रहण किया जाता है मगर श्वास लेने के लिए वायु तो हमें हर क्षण चाहिए। इसीलिए हमारे शास्त्रों में इसे जीवन से जोड़कर देखा गया और प्राण को वायु की संज्ञा दी गई है। वायु के महत्त्व को समझने और समझाने का इससे बेहतर तरीका और कोई नहीं हो सकता। वायु के अभाव से बड़ा संकट और कुछ नहीं हो सकता है। हाल ही में प्रकाशित ग्लोबल एयर रिपोर्ट ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है।

इस रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की 91 % आबादी वायु प्रदूषण से प्रभावित है। अगर ऐसा है तो बहुत सारे सवाल खड़े होने चाहिए। मसलन कारणों की पड़ताल, उपाय और बड़ी रणनीति पर विमर्श होना चाहिए। भारत तो वायु प्रदूषण से गंभीर रूप से प्रभावित है। दुनिया के सबसे ज्यादा प्रदूषित शहरों की एक बड़ी संख्या भारत में ही है। वायु शुद्धता के मानकों के अनुसार हवा में प्रदूषण कण 80 पीएम के भीतर होने चाहिए, पर देश का शायद ही ऐसा कोई शहर हो जहाँ सामान्य रूप से 150 से 200 पीएम तक प्रदूषण न हो।

गुड़गांव, गाजियाबाद, फरीदाबाद, नोएडा, पटना, लखनऊ, दिल्ली, जोधपुर, मुजफ्फरपुर, वाराणसी, मुरादाबाद और आगरा जैसे शहरों की स्थिति तो बहुत ही खराब है। यही हाल दुनिया के तमाम और बड़े शहरों का है। आज दुनिया जिस विकास की रेखा की ओर दौड़ लगा रही है, उसी में विनाश भी छिपा है। हमने ऐसे हालात पैदा कर दिए हैं कि हम न तो गरमी बरदाश्त कर पा रहे हैं और न ही ठंढक। इनसे राहत पाने के लिए हमने जो साधन जुटाए वे और भी अधिक घातक सिद्ध हुए। अत: वातानुकूलित उपकरणों के ज्यादा उपयोग ने गरमी-सरदी को एक नया आयाम दे दिया है।

अधिक गरमी के पीछे वायु प्रदूषण है; क्योंकि एयरकंडीशनर या अन्य इस तरह की सुविधाएँ वातावरण में हाइड्रोफ्लोरोकार्बन, क्लोरोफ्लोरोकार्बन की मात्रा बढ़ाते हैं, जिनका पर्यावरण पर प्रतिकूल असर पड़ता है। इससे प्रकृति का तापक्रम पर नियंत्रण खतम हो जाता है जिससे गरमियों के दिन भट्ठी की तरह सुलगते हैं और जाड़े फ्रिज की तरह व्यवहार करते हैं। सड़कों पर गाड़ियों की बढ़ती तादाद भी हवा का मिजाज बिगाड़ रही है।

आज लगभग एक अरब 35 करोड़ गाड़ियाँ दुनिया में धुआँ उँड़ेल रही हैं और सन् 2025 तक ये दो अरब हो जाएँगी। एक सामान्य गाड़ी साल में लगभग 4.7 मीट्रिक टन कार्बन-डाइऑक्साइड उत्सर्जित करती है। एक लीटर डीजल की खपत से 2.68 किलो कार्बन-डाइऑक्साइड निकलती है, पेट्रोल से यह 2.31 किलो के करीब निकलती है। वहीं तमाम स्वच्छ ईंधनों की उपलब्धता के बावजूद आज भी लकड़ी और गोबर के उपलों का इस्तेमाल हो रहा है। हालाँकि समय के साथ इनके उपयोग में कमी आई है, फिर भी दुनिया की लगभग आधी आबादी यानी 3.6 अरब लोग ऐसे ईंधन का प्रयोग कर रहे हैं।

इसके अलावा निर्माण कार्य, पराली व प्लास्टिक को जलाने से भी प्रदूषण बहुत बढ़ा है। इन पर निश्चित रूप से लगाम लगानी होगी। आज स्थिति यह हो चुकी है कि वायु प्रदूषण दुनिया में पाँचवीं सबसे बड़ी चुनौती बन गया है। इसके कारण श्वास की बीमारियाँ, हृदय रोग, फेफड़ों के कैंसर और त्वचा रोग बढ़ रहे हैं। आज तमाम असाध्य बीमारियों की जड़ें वायु प्रदूषण से ही जुड़ी हैं। इनके दुष्प्रभाव भी भारत और चीन में ही ज्यादा दिख रहे हैं।

प्रदूषण के कारण बच्चों में अस्थमा और मानसिक विकार भी उत्पन्न हो रहे हैं। प्रदूषण समय से पहले ही लोगों का जीवन लील रहा है। प्रदूषण का बढ़ता प्रकोप

शायद ही थमे; क्योंकि सुविधा और विलासिता की होड़ थमने वाली नहीं है। इसे तथाकथित विकास का प्रतीक भी मान लिया गया है। अमेरिका ने विलासिता के जो प्रतिमान बनाए हैं बाकी देश भी उन्हें ही हासिल करने की होड़ में लगे हैं। ऐसे तथाकथित विकास की दौड़ में ऊर्जा की खपत बढ़ जाती है।

इसे एक उदाहरण से समझ सकते हैं कि दुनिया में 55 फीसद शहरी लोग 70 % ऊर्जा की खपत करते हैं। विलासिता के नजदीक जाते-जाते हम कब प्रकृति से दूर होते गए, इसका हमें भान भी नहीं रहा। पहले हमने पानी को खोया, जिसके विकल्प के रूप में हमने प्यूरीफायर और बोतलबंद पानी का व्यापारिक विकल्प तलाश लिया। आज देश पानी के बड़े संकट से गुजर रहा है। अब बारी हवा की है और अब हवा के डिब्बों का भी प्रचलन शुरू हो गया है।

बीजिंग जैसे शहर में अब **ऑक्सीजन बॉक्स** बिकते हैं; क्योंकि वहाँ की हवा इस हद तक बदतर हो चुकी है कि कुछ ही घंटों में दमघोंटू स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। इस शहर में पहाड़ों की हवा वहाँ लाकर बेची जाती है। यही हालात भारत में भी बन रहे हैं; जहाँ दुनिया के सबसे प्रदूषित शहर बसे हैं। अवसरवादी व्यावसायिकता ने इन परिस्थितियों का जमकर फायदा उठाया है। मतलब अब एयर प्यूरीफायर भी धड़ल्ले से बिकने लगे हैं। दिल्ली में तमाम दफ्तरों की हवा अब प्यूरीफायर ही सुधार रहे हैं।

कितनी बड़ी विडंबना है कि जीवन के साधन हवा और पानी दूषित होकर हमें मारने पर उतारू हो रहे हैं। अब स्वस्थ जिंदगी के लिए बड़ी कीमत चुकानी पड़ रही है। अफसोस की बात है कोई आने वाले कल की तो छोड़िए आज की फिक्र करने को भी तैयार नहीं है। यह व्यापक खामोशी बहुत सालती है।

प्रदूषण के मसले पर न तो कोई बड़ी बहस होती है और न ही नीति निर्माता इस पर पर्याप्त चिंता करते दिखाई पड़ते हैं। चुनावों में भी ये मुद्दे नदारद ही रहते हैं। ऐसे में इस पर किसी सरकार को दोष भी नहीं दिया जा सकता; क्योंकि जनता को इसकी परवाह ही नहीं है। अगर हम अब भी नहीं जागे तो हालात और बिगड़ते जाएँगे। फिर एक दिन ऐसा भी आएगा कि हम आवाज उठाने के लिए ही नहीं बचेंगे; क्योंकि तब तक दुनिया गैस चैंबर बन चुकी होगी। ऐसे में हमें दुनिया और आने वाली पीढ़ियों के भविष्य की खातिर पर्यावरण बचाने का संकल्प लेना ही होगा। पर्यावरण बचेगा तो ही जिंदगी बचेगी। इसके लिए हमें अपने निहित स्वार्थों को तिलांजलि देकर पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु योगदान देना चाहिए। ❑

संत विमलमित्र अपने शिष्यों के साथ देशाटन पर निकले हुए थे। उन्होंने संकल्प लिया हुआ था कि वे किसी से भिक्षा माँगकर भोजन नहीं करते थे और अयाचित जो भी कुछ मिल जाता, उसे ग्रहण कर लेते थे। एक बार ऐसे ही बिना कुछ लिए, भूखे-प्यासे उन्हें एक मास गुजर गया, पर उनके शरीर का स्वास्थ्य और व्यक्तित्व का तेज यथावत् था। उसी स्थिति में वे निकले हुए थे कि उन्हें एक दंपती दिखे। अचानक विमलमित्र ने रुककर उनसे भोजन की याचना की, जिसे दंपती ने ठुकरा दिया। विमलमित्र बड़े प्रसन्न भाव से आगे बढ़ गए। उनके शिष्यों को यह पूरा प्रकरण विचित्र लगा सो स्वाभाविक ही था कि वे यह प्रश्न अपने गुरु से करते। पूछने पर विमलमित्र बोले—"आज बहुत दिन बाद मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि भोजन न माँगने पर मेरे अंदर भोजन न माँगने का अहंकार हो गया है, इसलिए संकल्प तोड़ याचना की और उस दंपती के मना करने पर अहंकार के टूटने से जो आत्मिक शांति मिली, उस प्रसन्नता को अनुभव कर ही मैं मुस्करा उठा।" फिर उनकी भोजन की व्यवस्था पूर्व की तरह ही हो गई।

साधना का परम लक्ष्य है चित्तशुद्धि

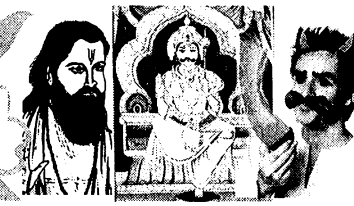

एक व्यक्ति नदी किनारे एक कुटिया बनाकर रहा करता था। वह वहाँ रहकर नियमित रूप से जप-तप करता था। वर्षों की साधना से उसे कुछ सिद्धियाँ भी प्राप्त हो गईं और अपनी उन सिद्धियों का प्रयोग वह भाँति-भाँति के चमत्कार दिखाने में करने लगा। देखते-ही-देखते हजारों लोग उसके अनुयायी और प्रशंसक बन गए। अब वह व्यक्ति एक साधु के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका था, परंतु उसे अपनी सिद्धियों का बहुत अहंकार था। अपने प्रशंसकों और अनुयायियों की बढ़ती संख्या को देखकर उसका अहंकार और भी बढ़ चुका था। अमीर व धनवान लोगों से उसे खूब चढ़ावा मिलने लगा। फलत: धनवान लोगों के साथ उसका व्यवहार मधुर होता, पर आम आदमी व गरीब लोगों से मिलने में उसकी कोई रुचि न होती।

समय के साथ वह अब वृद्ध हो चला था। वह अपनी मृत्यु के बारे में सोचकर बहुत भयभीत हो जाया करता था। जब कभी किसी मृत व्यक्ति को वह देखता तो उसे अपनी मृत्यु का भय लगा करता था। एक दिन अपनी मृत्यु का विचार करते-करते ही वह गहरी निद्रा में चला गया तब उसे एक स्वप्न आया। उसने स्वप्न में देखा कि उसकी मृत्यु हो गई है। उसकी आत्मा को यम के दूत यमलोक ले जा रहे हैं। यमलोक में पहुँचते ही उसे वहाँ बैठे हुए धर्मराज दिखाई पड़े। उसने देखा कि धर्मराज उसके कर्मों का लेखा-जोखा खोलकर बैठे हैं और उनके हिसाब से उसकी सद्गति अथवा अधोगति की घोषणा करने वाले हैं। संयोगवश उसी समय एक डाकू भी मरकर यमलोक पहुँचा।

धर्मराज अब दोनों की गति पर विचार कर घोषणा करने वाले थे, पर धर्मराज ने दोनों से कहा—"इससे पहले कि मैं अपना निर्णय सुनाऊँ, मैं तुम दोनों को अपने विषय में बोलने का अवसर देता हूँ।" डाकू ने तो हमेशा हिंसक कर्म किए थे, बुरे कर्म किए थे, इसलिए वह अपने कर्मों पर शर्मिंदा था और उसे इसका काफी पछतावा भी था। वह सोच रहा था कि जीवनभर मैंने कितने घृणित कुकर्म किए हैं, कितने लोगों को सताया है, दु:ख दिया है, कितने लोगों की हत्या भी की है। यह सोचकर उसकी आँखों में आँसू भर आए। वह विनम्र शब्दों में बोला—"हे धर्मराज! मैंने तो जीवनभर पापकर्म ही किए हैं, फिर मैं सद्गति पाने की आशा कैसे कर सकता हूँ। अत: आप जो भी दंड देंगे, उसे मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।" अब साधु के बोलने की बारी थी।

साधु बोला—"हे धर्मराज! मैंने तो जीवनभर जप-तप किए हैं। मैंने नित्य अग्निहोत्र भी किए हैं। मैंने कई धर्मग्रंथों का अध्ययन भी किया है। अत: इसके आधार पर मैं अपने लिए, स्वर्ग, मुक्ति, सद्गति आदि की आशा तो कर ही सकता हूँ। इसलिए आप मेरे लिए स्वर्ग के सुख-साधनों का शीघ्र प्रबंध करें।" धर्मराज ने दोनों की बातें सुनीं, फिर पहले डाकू से कहा—"तुम्हें दंड दिया जाता है कि तुम आज से इस साधु की सेवा करो।" डाकू ने सिर झुकाकर धर्मराज की आज्ञा स्वीकार कर ली, पर धर्मराज की यह आज्ञा सुनकर साधु ने आपत्ति जताते हुए कहा—"महाराज! इस पापी के स्पर्श से तो मैं अपवित्र हो जाऊँगा? फिर मेरी भक्ति, तपस्या का क्या मोल रह जाएगा? फिर पुण्यकर्मों का क्या महत्त्व रह जाएगा?"

धर्मराज को साधु की बात पर बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने कहा—"जिसे तुम डाकू कह रहे हो, उसे कम-से-कम अपनी गलती का एहसास तो है, पश्चात्ताप तो है, पर क्या तुम्हें अपनी गलती का एहसास है? तुम जीवनभर जप-तप का आडंबर करते रहे, पर क्या कभी जप-तप को अपनी चित्तशुद्धि का साधन समझ पाए? तुम तो सिद्धियों और चमत्कारों को ही सर्वोपरि मानते रहे। जप-तप तो चित्तशुद्धि का साधन है और चित्तशुद्धि होने पर ही साधक को मोक्ष, मुक्ति, इष्ट-दर्शन आदि दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।"

धर्मराज आगे बोले—"तुम तो जीवनभर अहंकार प्रदर्शन करते रहे, धनवान लोगों को ही अपने आश्रम में आश्रय देते रहे। दरिद्रनारायण के लिए तो तुमने कभी कुछ सोचा ही नहीं। इसलिए तुम्हारी तपस्या निष्फल रही। इसलिए तो तुम वर्षों के तप के बाद भी अहंकारग्रस्त ही रहे। तुम

यह जान ही नहीं सके कि सबमें एक ही परमात्मा का वास है और सबमें एक ही आत्मतत्त्व समाया हुआ है। अस्तु तुम्हारी तपस्या अधूरी और निष्फल ही रही। अत: आज से तुम इस डाकू की सेवा के साथ-साथ अन्य दीन-दु:खियों की सेवा करके अपना तप पूर्ण करो! उसी तपस्या में फल है, जो अहंकाररहित होकर की जाए। ऐसी तपस्या ही अंतत: ईश्वरप्राप्ति, मोक्ष, मुक्ति आदि का आधार बनती है।'' यमराज—धर्मराज की ज्ञान की बातें सुनते ही साधु की आँखें खुल गईं। आँखों में पश्चात्ताप के आँसू भर आए, साथ ही स्वप्न भी टूट गया। साधु को अपनी गलती का एहसास हुआ। उसे समझ में आ गया कि अंतर्यामी प्रभु हमारे सभी कर्मों को देख रहे हैं। उसे लगा मानो उसे तप-साधना का असली मर्म समझाने के लिए ही प्रभु ने ऐसा स्वप्न दिखाया है। प्रभु ने उसका सच्चा मार्गदर्शन किया है। उस दिन से वह सच्ची तप-साधना में लीन हो गया। सचमुच चित्तशुद्धि ही समस्त साधनाओं का सार है। ❑

अब्दुल अब्बास नेकदिल एवं खुदापरस्त इनसान थे। वे टोपी बुनकर और उसे बेचकर अपना गुजारा किया करते थे। टोपी बेचने से दो पैसे मिलते, उनमें से एक पैसे से वे अपना गुजारा करते और एक पैसे किसी जरूरतमंद की सहायता के लिए रख लेते। एक दिन एक धनी व्यक्ति उनकी कुटिया पर पहुँचा। उसने उनकी नेकनीयती के बारे में बहुत सुन रखा था। उसने उनसे कहा—''वह अपना धन किसी जरूरतमंद को दान देना चाहता है, पर उसे यह कैसे पता चलेगा कि यह इनसान साफ नीयत का है।'' अब्दुल अब्बास बोले—''दोस्त! तुम्हें उसकी चिंता करने की जरूरत नहीं। पैसा जिस नीयत से कमाया जाता है वो वैसी ही नीयत वाले के पास चला जाता है।'' उस धनी व्यक्ति को यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि उसने अब्बास जी से पूछा—''वो कैसे ?'' अब्दुल अब्बास बोले—''ऐसा करो कि तुम अपना धन और मेरा मेहनत से कमाया एक पैसा ले जाओ और इसे दान दे दो। एक दिन बाद जाकर देखना कि किसने उस पैसे का क्या उपयोग किया ?''

धनी व्यक्ति अपने पाँच रुपये और अब्बास जी का एक पैसा लेकर निकला। उसने अपने पाँच रुपये एक लँगड़े भिखारी को दिए और अब्बास जी का पैसा सड़क किनारे खड़े एक व्यक्ति को दे दिया। अगले दिन जब वह अब्बास जी से मिलने लौट रहा था तो उसने देखा कि लँगड़ा भिखारी सड़क के किनारे बेसुध पड़ा है और उसके दूसरे पैर में भी चोट लग गई है। पूछने पर पता चला कि वो भिखारी उसको मिले रुपये शराब पीने में गँवा आया है। अब धनी व्यक्ति को उत्सुकता हुई कि दूसरे व्यक्ति ने पैसे का क्या किया होगा ? उसे ढूँढ़ता हुआ वो उसके घर पहुँचा तो वो व्यक्ति अपने बच्चे के साथ उसके पैर पड़ने लगा। पूछा तो उसने बताया—''उसका बच्चा एक दिन पहले बीमार था और उसके पास दवा के लिए पैसे नहीं थे। मिले हुए पैसों से उसने अपने बीमार बच्चे का इलाज करवाया और आज वो बच्चा अच्छा हो गया।'' यह देख-सुनकर उस धनी व्यक्ति को पैसे के संस्कारों के पीछे छिपे अर्थ का रहस्य पता चल गया।

अनंत संभावनाओं वाला कण—'हिग्स वोसोन'

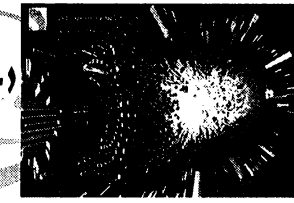

विज्ञान अपने अनुसंधानों में सतत प्रयत्नशील रहता है। उसी क्रम में करीब 60 वर्षों से किसी वस्तु में भार होने की वजह जानने की वैज्ञानिक खोज अब अपने मुकाम पर पहुँचती दिख रही है। सर्न (यूरोपियन ऑर्गनाइजेशन फॉर न्यूक्लियर रिसर्च, जिनेवा) में वैज्ञानिकों का यह दावा कि महाप्रयोग के दौरान उन्हें हिग्स वोसोन या गॉड पार्टिकल से मिलते-जुलते सब-एटॉमिक कण दिखे हैं; एक बड़ी उपलब्धि है। इससे उन सवालों के जवाब ढूँढ़ना आसान होगा, जो अब तक अनसुलझे हैं। खासकर ब्रह्मांड की उत्पत्ति से जुड़ा यक्षप्रश्न, जिसका वैज्ञानिक उत्तर अब तक नहीं ढूँढ़ा जा सका है।

सर्न के वैज्ञानिकों का कहना है कि नया कण 4.9 सिग्मा(मानक विचलन) के स्तर के आस-पास का है; जबकि किसी भी नए कण की खोज के लिए 5 सिग्मा का पैमाना पार करना आवश्यक होता है। इसीलिए यह उम्मीद है कि आवश्यक 5 सिग्मा का स्तर पार कर लिया जाएगा। अभी एक कण के आकार की झलक मिली है, पर तकनीकी रूप से उसकी प्रामाणिकता साबित नहीं हुई है।

इस निष्कर्ष को लेकर यह भी कहा जा रहा है कि विज्ञान अब ईश्वर के करीब पहुँच गया है। यह एक गलतफहमी है, जो इसके नाम की वजह से उत्पन्न हुई है। भौतिकी का एक स्टैंडर्ड मॉडल है, जिसमें यह माना जाता है कि ब्रह्मांड 12 मौलिक कणों (**फंडामेंटल पार्टिकल्स**) और चार मौलिक बलों (**फंडामेंटल फोर्सेस**) से बना है।

सन् 1964 में एक और कण होने की उम्मीद हिग्स, ब्राउट और इनग्रेल्ट नामक वैज्ञानिकों ने जताई थी। सर्न का यह प्रयोग उसी कण की वास्तविकता जानने के लिए किया जा रहा है। चूँकि एक रोचक घटना के बाद इस कण को 'गॉड पार्टिकल' कहा जाने लगा, जिससे लोग भ्रमित हुए। किए जा रहे वैज्ञानिक प्रयोग भी ईश्वर के अस्तित्व को आधार मानकर बढ़ रहे हैं। यह घटना भी गुरुत्वाकर्षण की खोज करने जैसी ही है, जिसमें न्यूटन ने गिरते हुए सेब को देखकर एक ऐसे बल की खोज की, जिसे कोई देख नहीं सकता।

हिग्स ने जिस कण की चर्चा की, वह भी अब तक हमारी आँखों से ओझल है। इसलिए लोगों ने उस ढाँचे में ईश्वर को रखा और इस प्रयोग को 'भगवान की खोज' का नाम दे दिया। असल में यह प्रयोग ब्रह्मांड के संबंध में हमारी समझ विकसित करता है। यह बताता है कि आखिर ब्रह्मांड की उत्पत्ति कैसे हुई? इस प्रयोग से अब हम **बिग बैंग थ्योरी (महाविस्फोट सिद्धांत)** को बेहतर तरीके से समझ सकेंगे। अब तक माना जाता रहा है कि करीब 14 अरब साल पहले हुए महाविस्फोट (बिग बैंग) से ही ब्रह्मांड क्रमशः अस्तित्व में आया।

इस तथ्य की पुष्टि के लिए सर्न में एक लार्ज हेड्रॉन कोलाइडर (एलएचसी)बनाकर उसमें कृत्रिम तरीके से महाविस्फोट की स्थिति पैदा की। एलएचसी में आयनों की टक्कर से उसके भीतर 10 खरब सेल्सियस का तापमान पैदा किया गया, जो सूर्य के केंद्र में मौजूद तापमान से लाखों गुना ज्यादा था। वजह साफ है कि वैज्ञानिक उस स्थिति की पुनरावृत्ति चाहते थे, जिसमें ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई होगी। हालाँकि अब यह भी कहा जा रहा है कि इस प्रयोग के आधार पर लाया गया नया निष्कर्ष संचार क्रांति में तेजी लाएगा, नैनो तकनीक में नई इबारत लिखेगा या फिर ऊर्जा का भंडार बढ़ाएगा, पर तत्काल ऐसा होता संभव नहीं दिख रहा।

संभव है कि आने वाले वर्षों में इस खोज के आधार पर कई अन्य खोजें संभव हों, जिनका इस्तेमाल मानव जीवन को सुगम बनाने के लिए किया जाए। ठीक वैसे ही, जैसे वर्ल्ड वाइड वेब (डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू) की शुरुआत हुई। उसे वैज्ञानिकों ने आपसी संवाद स्थापित करने अथवा जानकारी बाँटने के लिए शुरू किया था और आज यह पूरी दुनिया में इस्तेमाल हो रहा है। दिलचस्प है कि उसकी बुनियाद भी सर्न में ही रखी गई थी। यह प्रयोग हम भारतीयों के लिए गर्व का विषय होना चाहिए। इसके कई कारण हैं।

पहली और मुख्य वजह तो यही है कि यह खोज भारतीय वैज्ञानिक सत्येंद्र नाथ बोस के नाम से जुड़ी हुई है।

उनके नाम से ही वोसोन शब्द निकला है। इसके अतिरिक्त करीब दस भारतीय संस्थान सर्न से जुड़े हैं। इस महाप्रयोग में इस्तेमाल लाखों इलेक्ट्रॉनिक चिप भी अपने ही देश से भेजे गए थे।

लिहाजा भारत को इस परियोजना का ऐतिहासिक जनक अगर कहा जा रहा है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। बहरहाल यह परियोजना हमारे धर्मग्रंथों की महत्ता भी स्थापित करती है, जिसमें ब्रह्मांड की उत्पत्ति की झलक मिलती है।

शिव के तांडव नृत्य वाली प्रतिमा नटराज इसका स्पष्ट उदाहरण है। वजह है कि जब ब्रह्मांड की उत्पत्ति पर शोध की दिशा में आगे बढ़ा गया, तो भारत सरकार ने नटराज की एक प्रतिमा सर्न को भेंट की थी, जिसे वहाँ स्थापित किया गया है। आज जब सर्न के साथ भारत के दोतरफे रिश्ते मजबूत हुए हैं और दोनों एकदूसरे के वैज्ञानिक अनुसंधानों में खुले हृदय से मदद कर रहे हैं तब यह उम्मीद बलवती होती है कि यह महाप्रयोग हमारे वैज्ञानिकों को और भी नए-नए अन्वेषणों के लिए प्रेरित करेगा। विज्ञान के नित नए आविष्कारों का लाभ मानवता को मिलना चाहिए। ❑

उपगुप्त भगवान बुद्ध के निकटवर्ती शिष्य थे। वे बड़े आकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी थे और जो उनसे एक बार मिलता वो उनको आसानी से भूल नहीं पाता था। एक बार एक सुंदरी उनसे मिलने आई और उनके प्रति अत्यधिक अनुरक्त हो गई। उसने उपगुप्त से प्रार्थना की कि वे कुछ समय उसके साथ बिताकर उसे कृतार्थ करें। उपगुप्त ने उत्तर दिया—"जब उचित समय आएगा तो वे जरूर उसके साथ समय बिताएँगे।"

समय बीतता गया। जैसे-जैसे उस सुंदरी की आयु बढ़ी, वैसे-वैसे उसे अनेक व्याधियों ने आ घेरा। जो लोग कल उसकी सुंदरता पर आकर्षित होते थे, वे आज उसको देखकर मुँह फेरने लगे। वो अकेली बैठकर अपने दुर्दिनों को कोसा करती। ऐसे में एक दिन उपगुप्त उसके घर पहुँचे और उससे बोले—"देवि! मैं अपने दिए वचन के अनुसार तुम्हारी सेवा में उपस्थित हूँ।"

वह आश्चर्यचकित होकर बोली—"प्रभु! जब मैं प्रेमयोग्य थी तब तो आपने मुझे विस्मृत कर दिया और आज इस पीड़ित और बेसहारा को देखने चले आए?"

उपगुप्त ने कहा—"हे देवी! शारीरिक आकर्षण से उपजी आसक्ति वासना कहलाती है। प्रेम तो भावनात्मक संबंधों पर आधारित होता है। मेरी दृष्टि में यही समय तुम्हारे साथ बिताने के लिए उपयुक्त है।" वह महिला यह सुनकर नतमस्तक हो गई।

भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहन न दें

भारतीय संस्कृति ने समस्त विश्व को यह संदेश दिया कि **आत्मवत् सर्वभूतेषु**—अर्थात सभी जीवों को अपने समान देखना, सब में अपनी आत्मा का अनुभव करना है। इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि **पर पीड़ा सम नहिं अधमाई**—अर्थात दूसरों को पीड़ा देने जैसा निकृष्ट कर्म कोई नहीं है। ये हमारे सिद्धांत हैं, इन्हें सही रूप में वही देख पाता है, जो सहृदय है और जिसे गरीब, कमजोर, अपाहिज तथा परिवार से बिछड़े सड़कों पर भिक्षा माँगने बैठे लोगों को देखकर दु:ख होता है। भारत के जितने तीर्थस्थल हैं, वहाँ लंबी-लंबी कतारें भिखारियों की मिलती हैं। जितना बड़ा तीर्थ, उतनी अधिक संख्या में भिखारी वहाँ पहुँचते अथवा पहुँचाए जाते हैं; क्योंकि तीर्थयात्री अधिक आएँ तो भिक्षा अधिक मिलती है।

दु:खद यह है कि भिखारियों में बच्चों की संख्या बहुत ज्यादा है। वृद्ध, महिलाएँ और पुरुष बड़ी संख्या में सड़कों पर बैठे एवं हाथ फैलाए देखे जा सकते हैं। कुछ बेचारे इस तरह कटे अंगों वाले दीनभाव से यात्रियों की दया-भावना को जगाते, हाथ फैलाते, कभी संतुष्ट होते तो कभी निराश होते नजर आते हैं।

यह कटु सत्य है कि हम अधिकतर भारतवासी तीर्थयात्रा आदि परलोक सुधारने के लिए करते हैं और इन भिखारियों को दान देकर भी मानो अगले जन्म के लिए अपनी भविष्य निधि बना लेते हैं। कोई यह नहीं सोचता कि आखिर इतनी बड़ी संख्या में बच्चे भिखारी कैसे हो गए?

एक महिला के साथ दो-तीन बच्चे हों तब भी कोई यह स्वीकार कर सकता है कि वे उसकी स्वयं की संतानें हो सकती हैं, परंतु जहाँ एक-एक दर्जन से ज्यादा बच्चों की संरक्षिका एक ही महिला भिखारी दिखाई पड़े तब निश्चित ही यह संशय उत्पन्न होता है कि ये बच्चे कहीं-न-कहीं से लाए गए हैं और भिखारी बनाए गए हैं। संभव है कि अधिक भिक्षा पाने के लिए उन्हें अपाहिज भी बना दिया गया होगा।

एक सर्वेक्षण के अनुसार केवल राजधानी दिल्ली में ही हर छह मिनट में एक बच्चा गायब होता है और गायब होने वालों में 60 % लड़कियाँ हैं। बच्चों के लापता होने के साथ ही उन्हें बाल मजदूर बनाने अथवा देह व्यापार में धकेलने या भिक्षा का उपकरण बनाने का काम शुरू हो जाता है।

यूनिसेफ के आँकड़ों के अनुसार देशभर में करीब 26 लाख बच्चे बंधुआ मजदूर के रूप में काम कर रहे हैं। बाल अधिकार संरक्षण आयोग के सदस्य ने यह भी कहा कि जब तक बच्चों के लापता होते ही उन्हें ढूँढ़ लेने के लिए सरकारी एजेंसियाँ सक्रिय और सफल नहीं हो जाती हैं, तब तक बच्चों का शोषण नहीं रुक सकता। कौन नहीं जानता कि जो लापता बच्चे मिल जाते हैं, उनमें से भी लड़कियों की संख्या बहुत कम रहती है।

आँकड़े यह भी बताते हैं कि गायब हुए लगभग छह लाख बच्चों में से डेढ़ लाख से ज्यादा बच्चे आज तक नहीं मिले हैं। यह केवल एक वर्ष की नहीं, हर वर्ष की दु:खद कहानी है। सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ये बच्चे या तो विदेश में बेचे गए या फिर उन तीर्थों की नदियों के पवित्र किनारों पर नारकीय जीवन जीने को विवश किए गए।

ऐसे भी बहुत से भिखारी इन तीर्थों तथा अन्य शहरों में देखने को मिलते हैं, जिनकी आयु हिंदुस्तान की आजादी के समय से भी ज्यादा की है। पिछले 73 वर्षों में इन बेचारों को संरक्षण का कोई ऐसा स्नेहपूर्ण हाथ या आश्रयस्थल प्राप्त नहीं हो सका, जिसमें ये जीवन के कुछ दिन सकुशल बिता सकें।

यह तो बीते पलों की बात है कि दुधमुँहे बच्चों से लेकर किशोरावस्था तक की आयु के नादान बालक एक ही जैसी स्थिति में दूसरों के हृदय की दया को जगाते अथवा उन्हें यह विश्वास दिलाते हुए देखे जाते हैं कि अगर उन्हें कुछ भिक्षादान, कपड़े या धन दे दिए जाएँ तो उनका वर्तमान, भविष्य, इहलोक और परलोक सुधर जाएँगे। आखिर क्या कारण है कि सड़कों पर बैठे ये भिखारी उनकी आयु के अनुसार सरकारी, गैरसरकारी बाल संरक्षण गृहों और वृद्धाश्रमों में नहीं भेजे गए?

हर राज्य में नाममात्र के लिए ही सही, सरकारें बाल संरक्षण गृह चलाती हैं। विडंबना यह है कि जितने बच्चे बाल सुधारगृह अर्थात बच्चों की जेलों में बंद किए मिलते हैं, उतने पढ़ा-लिखाकर भविष्य बनाने का दावा करने वाले सरकारी संरक्षण गृहों में नहीं पहुँच पाते। निश्चित ही थोड़े-बहुत अंतर से ज्यादातर प्रांतों की हालत ऐसी ही है। सुधारगृह में भी कितना सुधार होता है, अब यह कहने की आवश्यकता नहीं। यह कहना भी अनावश्यक है कि बाल जेलों में बंद लगभग 90 प्रतिशत अत्यंत गरीब परिवारों के बच्चे दूसरे प्रांतों से लापता होकर या माता-पिता की अत्यंत गरीबी का शिकार होकर रोटी के टुकड़ों और चंद सिक्कों के लिए बड़े शहरों में पहुँच जाते हैं; जहाँ उनका शोषण होता है। दुर्भाग्यवश वे माफिया के लिए धन कमाने का साधन बन जाते हैं।

भारत में केंद्र सरकार का भी महिला बाल विकास मंत्रालय है। बाल विकास आयोग और मानवाधिकार आयोग भी हैं, परंतु तब भी यह समस्या इतनी चिंताजनक क्यों है ? हमारे देश का संविधान सबको सम्मान और जीवन की सुरक्षा देने की जिम्मेदारी लेता है। अब तो देश में हर बच्चे को शिक्षा देने का अधिकार एक कानून का रूप ले चुका है। प्रश्न उठता है कि उन बच्चों का अधिकार कौन सुरक्षित करेगा, जिन्होंने न अपने माता-पिता देखे और न ही किसी विद्या मंदिर की दहलीज पार की। वे तो बस, कुछ माफिया नेताओं का अथवा गरीबी से लाचार बेबस माता-पिता के लिए रोटी कमाने का एक यंत्र बन जाते हैं।

सरकारों को याद रखना होगा कि जब तक जनसंख्या नियंत्रण के लिए कानून नहीं बनाया गया और देश में कहीं भी गंगा घाट या यमुना घाट, पूजनस्थल अथवा मेलों की भीड़भाड़ में हाथ फैलाए दो हाथों से भिक्षा माँगते बच्चों को सरकारी संरक्षण गृहों में नहीं पहुँचाया गया, तब तक देश का भविष्य ऐसा ही धुँधला रहेगा, जैसा इन बच्चों का हो रहा है। बड़ी-बड़ी फैक्टरियों, होटलों, कारखानों और तथाकथित बड़े आदमियों के विशाल महलों के अंदर यह अनाथ बचपन पिस-सा जाता है। सरकारें किसी तीर्थस्थान, गंगा घाट, संगमस्थली या अन्य राष्ट्रीय स्तर के धार्मिक आयोजनों वाले स्थानों से उनकी घेराबंदी करें, जो हाथ फैलाए बैठे हैं। अगर केवल हरिद्वार के गंगाघाट से ही प्रारंभ कर लें तो एक बड़ी संख्या में बच्चे लापता नहीं रहेंगे, बल्कि उनके मूल निवास ढूँढ़ लिए जाएँगे।

साथ ही बच्चों को उठाने वाले गिरोह भी पकड़े जाएँगे। जो बुजुर्ग, बेसहारा नीले आकाश तले गंगा किनारे केवल भिक्षा के सहारे वर्षों से जीवनयापन कर रहे हैं, उन्हें सरकारी वृद्धाश्रम, संरक्षण गृह आदि में रखा जाए तब उन्हें भी जिंदगी का कुछ एहसास होगा। एक प्रश्न उन सरकारों से भी है, जो वर्षों से देश को चला रही हैं। शुरुआती दस-बारह वर्ष तो इस आधार पर छोड़े जा सकते हैं कि विभाजन की पीड़ा झेल रहे देश को पटरी पर लाना था, परंतु उसके बाद क्या हुआ। संविधान के अनुच्छेद 47 में यह स्पष्ट लिखा है कि राज्य का यह कर्त्तव्य है कि लोगों का जीवन स्तर सुधरे और उन्हें पौष्टिक भोजन मिले। आँकड़ों के अनुसार विश्व के कुल भूखे लोगों में से 50 % भारत में रहते हैं।

यह भी कहा गया कि 20 करोड़ ऐसे लोग भारत में हैं, जिनको भोजन का कोई सुरक्षित साधन नहीं मिला। यह एफएओ की रिपोर्ट है और ग्लोबल हंगर इंडेक्स के अनुसार 88 देशों की सूची में भारत का 66वाँ नंबर है। गरीब और अतिगरीब लोगों को सस्ते दामों पर आटा, चावल और दालें आदि देने की व्यवस्था सरकारों ने की राशन तथा अन्य सामग्रियाँ प्रदान की गईं, परंतु इस सबके बाद भी वे लोग किसी भी श्रेणी में नहीं लाए गए, जिनका न घर है, न परिवार है और गरीबी रेखा से नीचे ही नहीं, अपितु कंगाली के कीचड़ में सने-सने ही वे हाथ फैलाते हैं तो कभी पेट भर खाते हैं और कभी तरसते रह जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत में भिक्षा बहुत मिल जाती है। लंगर भी लगते हैं, पर यह बेघरी और भूख का स्थायी समाधान नहीं।

बहुत अच्छा हो इस कार्ययोजना का आरंभ गंगा किनारे बसे बड़े शहरों और तीर्थस्थानों से किया जाए। बच्चे संरक्षण गृहों में शिक्षा प्राप्त करें। महिलाएँ सरकारी केंद्रों में सुरक्षित रखी जाएँ। वृद्ध वृद्धाश्रमों में भेजे जाएँ तथा जो युवावस्था में ही भिखारी बन गए या बचपन से ही बनाए गए उन्हें कौशल विकास का लाभ देकर किसी काम में लगाया जाए। वे देश की उन्नति में योगदान दें। माँगकर खाने वाले स्वयं भी वंचित न रहें और समाज पर भी बोझ न बनें। अच्छा हो वर्तमान सरकार धरातल से इन कार्यों की शुरुआत करे। ❑

सकारात्मक सोच

हर व्यक्ति के सोचने का अपना एक तरीका होता है। अपनी इसी सोच के कारण हर व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है और अलग ढंग से कार्य करता है। सोच में दूसरों से समानता भी हो सकती है, लेकिन जीवन जीने व कार्य करने के ढंग में सबमें भिन्नता होती है, इसी कारण हर व्यक्ति मौलिक होता है। उसमें कुछ मौलिक गुण होते हैं, जिनके कारण वह विशेष होता है। सोच-विचार की कला एक नदी की तरह हर व्यक्ति में प्रवाहित होती है, लेकिन सोच में नकारात्मकता का घुलना नदी में गंदे नाले के घुलने के समान होता है, जो नदी के पानी को मटमैला व प्रदूषित कर देता है और साथ ही ऐसा पानी नुकसानदायक भी होता है। ठीक इसी तरह सोच में नकारात्मकता का प्रवेश होने पर व्यक्ति की चिंतन करने की प्रक्रिया दूषित हो जाती है।

जीवन में नकारात्मकता घने अँधेरे धुएँ की तरह होती है, जिसके कारण हमें आगे का रास्ता साफ-साफ नजर नहीं आता और इसी कारण हमारा चिंतन व हमारे दृष्टिकोण के नकारात्मक होने पर हम परेशान हो जाते हैं, उदास हो जाते हैं, निराश हो जाते हैं। जीवन में आगे रास्ते हो सकते हैं, जीवन में कोई उम्मीद हो सकती है—हम तब भी यह नहीं सोच पाते; जबकि सकारात्मकता जीवन में उस प्रकाश की तरह होती है, जो हमें सब कुछ स्पष्ट तौर पर दिखाती है और साथ ही हमें वे राहें भी दिखाती है, जो हमारी दृष्टि से ओझल होती हैं।

सकारात्मकता के प्रकाश में व्यक्ति को जीने की उम्मीद मिलती है तथा उसके जीवन में रचनात्मकता नए रूप में उभरती है। सकारात्मकता के कारण व्यक्ति के उत्साह व उमंग में वृद्धि होती है और सकारात्मकता का बल होने पर व्यक्ति जीवन में निडर होकर आगे बढ़ता है और दूसरों को भी आगे बढ़ाता है। जीवन में जब चहुँओर नकारात्मकता व निराशा का वातावरण हो, तब जीने की सिर्फ एक ही राह बचती है और वह है सकारात्मक सोच की। अगर जीवन में सकारात्मक सोच नहीं है, तो व्यक्ति आशा व उम्मीद करना भी छोड़ देता है और नकारात्मकता व निराशा के आगे विवश होकर अपने घुटने टेक देता है। फिर व्यक्ति वही करता है, जो नकारात्मकता उससे करवाती है और नकारात्मकता का कार्य करने का ढंग सदैव विध्वंसक व विनाशकारी ही होता है।

यही कारण है कि जीवन में, सोच में नकारात्मकता हावी हो जाने पर मनोरोग बढ़ने लगते हैं और इस सोच के कारण कई लोग आत्महत्या करने पर विवश हो जाते हैं; क्योंकि नकारात्मकता का दंश व्यक्ति को इतना विवश व बेचैन कर देता है कि वह अपने इस जीवन से ही छुटकारा चाहता है। व्यक्ति यह सोचता है कि मर जाने के उपरांत शायद उसे मानसिक घुटन, पीड़ा व बेचैनी से राहत मिलेगी। हकीकत में ऐसा होता नहीं है; क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार—व्यक्ति मरते समय जिस मानसिक अवस्था में होता है, वही उसकी गति होती है। इसीलिए जीवन में सकारात्मक चिंतन होना जरूरी है। हमारे शुभचिंतक भी हमें सदैव सकारात्मक सोच रखने की सलाह देते हैं और नकारात्मक सोचने पर हमें टोकते हैं।

मनोचिकित्सकों का भी यह कहना है कि सकारात्मक सोच रखने वालों को नकारात्मक सोच रखने वालों की तुलना में सफलता मिलने की संभावना अधिक होती है। विद्वान पुरुष कहते हैं कि एक विनाशकारी व्यक्ति को हर अवसर में कठिनाई दिखती है तो वहीं एक आशावादी व्यक्ति को हर कठिनाई में अवसर दिखता है। सकारात्मक सोच व्यक्ति के तन व मन, दोनों को स्वस्थ रखने में अहम भूमिका निभाती है। ऐसी सोच रखने से न केवल अपने जीवन को संतुलित रखने में मदद मिलती है, बल्कि इसके कारण हमारे प्रत्येक दिन के अनुभव ज्यादा सुखद बन पाते हैं।

इसके कारण व्यक्ति के जीवन में लचीलापन आता है, वह जीवन में बदलाव के लिए भी मानसिक रूप से तैयार रहता है और ढर्रे के जीवन से अलग हटकर अपने जीवन में कुछ नया करता है, जो उसे संतोष व सुकून देता है। बस, जरूरत है तो अपने मन में आने वाले नकारात्मक विचारों को सकारात्मक विचारों में बदलने की और इसके

लिए हमें विचारों की प्रकृति को पहचानना आना चाहिए और हमें अपने मन में आने वाले विचारों के प्रति जागरूक रहना चाहिए; क्योंकि जब हम अपने सकारात्मक विचारों को पहचान पाएँगे, तभी मन में प्रवेश करने वाले नकारात्मक विचारों को चुनौती दे सकेंगे।

जिस तरह घर का दरवाजा खोलते ही बाहर की धूल, हवा आदि घर में स्वत: ही प्रवेश करने लगते हैं, लेकिन यदि घर के दरवाजे पर ही जाली लगी हो तब उनके प्रवेश की संभावना कम हो जाती है, ठीक इसी तरह मन की खिड़की खोलने से पहले उसके ऊपर सकारात्मक सोच की जाली लगा देनी चाहिए, ताकि नकारात्मक विचार यों ही हमारे मन में प्रवेश न कर सकें। यूएस नेशनल साइंस फाउंडेशन ने विचारों पर एक शोध किया और यह पाया कि हमारे दिमाग में आमतौर पर एक दिन में करीब 50 हजार विचार आते हैं। चौंकाने वाली बात यह है कि इनमें से 70 से 80 % विचार नकारात्मक होते हैं। अब सवाल यह उठता है कि नकारात्मक विचारों को हम सकारात्मक कैसे बनाएँ?

मन में विचारों का आना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। विचार सबके मन में आते हैं, लेकिन विचार उसी के मान्य होते हैं व महान होते हैं, जो अर्थपूर्ण हों, जिनका अपना कोई अस्तित्व हो। इसलिए अर्थपूर्ण विचारों के लिए जरूरी है कि हम नई पुस्तकें पढ़ें, अच्छे लोगों से मिलें, उनके विचारों व उनके अनुभवों को सुनें, अपने इष्टदेव के प्रति आस्था, विश्वास व निष्ठा रखें, अपने व्यस्त जीवन में थोड़ा-सा समय ध्यान व योग के लिए अवश्य निकालें। ऐसा करने से व्यक्ति नए व अच्छे विचारों के संपर्क में आता है और इन विचारों का प्रभाव भी उसके जीवन में देखने को मिलता है।

नकारात्मक सोच को सकारात्मक सोच में बदलने के लिए हमें अपनी जीवनशैली में भी थोड़ा-सा बदलाव करने की जरूरत होती है। इसके लिए हमें अपना हर काम खुश रहकर करना चाहिए; क्योंकि खुश रहने से हमारा मन व हमारे आस-पास का वातावरण हलका होता है और ऐसे वातावरण में कार्य करने से भारी भरकम व बोझिल दिखने वाले काम भी रुचिकर लगने लगते हैं।

मानव स्वभाव ऐसा है ही, जो जीवन में जरा भी गड़बड़ी होने पर नकारात्मक सोचने लगता है, घबराने लगता है, फिर अगर जीवन में कुछ बड़ी गड़बड़ी हो, तब फिर उसके होश ही गायब हो जाते हैं। इसलिए व्यक्ति को सकारात्मक सोच के दायरे में रहने का इतना अभ्यास करना चाहिए कि जरा-सी भी नकारात्मकता उसे प्रभावित न करने पाए और बड़ी-से-बड़ी नकारात्मकता के अँधेरे को चीरकर भी वह आगे बढ़ जाए।

सकारात्मक सोच की कला व्यक्ति को उस स्पंज की तरह बना देती है, जिससे टकराकर नकारात्मक सोच उसे चोटिल नहीं कर पाती है और न ही उसमें स्थायी रूप से प्रवेश कर पाती है, इसलिए हमें जीवन में अपनी चिंतनशैली, सोच व दृष्टिकोण को सदैव सकारात्मक रखना चाहिए। ❑

भगवान का अनुग्रह अर्जित करने के लिए भी शुद्ध जीवन की आवश्यकता है। साधक ही सच्चे अर्थों में उपासक हो सकता है। जिससे जीवन-साधना नहीं बन पड़ी, उसका चिंतन-चरित्र, आहार-विहार, मस्तिष्क अवांछनीयताओं से भरा रहेगा। फलत: मन लगेगा ही नहीं। लिप्साएँ और तृष्णाएँ जिसके मन को हर घड़ी उद्विग्न किए रहती हैं, उससे न एकाग्रता सधेगी और न चित्त की तन्मयता आएगी। कर्मकांड की चिह्नपूजा भर से कुछ बात बनती नहीं। भजन का भावनाओं से सीधा संबंध है। जहाँ भावनाएँ होंगी, वहाँ मनुष्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सात्त्विकता का समावेश अवश्य करेगा।

—परमपूज्य गुरुदेव

धार्मिक चिंतन में सामाजिक एकता

क्या धर्म के आधार पर एकता एवं सामंजस्य संभव है? यह प्रश्न तब उठता है, जब धर्म को प्रेम, सेवा और सद्भाव के बजाय घृणा और हिंसा का प्रसार करते देखा जाता है। अपने ही मत को सर्वश्रेष्ठ साबित करने की हठधर्मिता और अपने इतर दूसरों को हेय दृष्टि से देखना व जबरन अपने धर्म के अनुकरण की अपेक्षा एवं आग्रह, यह धार्मिक लोगों के साथ जुड़ी एक आम विडंबना देखी जाती है। व्यक्ति के विवेक को कुंद करने वाले धर्म के इस स्वरूप को देखते हुए ही शायद किसी विचारक ने धर्म को अफीम की गोली तक कह दिया था। हालाँकि धर्म के संदर्भ में भारत का सार्वभौमिक दृष्टिकोण सदा सराहनीय रहा है।

वैयक्तिक जीवन हो या सामूहिक-सामाजिक जीवन— धर्म भारतीय जीवन की केंद्रीय धुरी रहा है। कुछ कालखंड विशेष की धार्मिक-सामाजिक संकीर्णता-कट्टरता के बावजूद यहाँ धर्म में बहुत उदारता रही है, जैसी शायद ही विश्व के किसी कोने में रही हो। यहाँ प्राचीनकाल से ही हर मत एवं संप्रदाय, मुक्त आकाश के नीचे फलते-फूलते रहे हैं। चार्वाक जैसे घोर भोगवादी संप्रदायों तक को यहाँ अपने विचारों के प्रसार की स्वतंत्रता रही। कुछ तो भगवान के अस्तित्व तक को नहीं मानते रहे, पर इसके बावजूद उनके प्रति भारतीय भाव सकारात्मक ही रहा।

आश्चर्य नहीं कि भारतभूमि में हर तरह के मत, संप्रदाय और धर्म विकसित हुए और फले-फूले। दूसरे धर्मों के प्रति भी भारतीय मानस बहुत उदार रहा है। यह धार्मिक शरणार्थियों का आश्रयस्थल रहा है। जब यहूदी, रोमन क्रूरता के शिकार हुए, तो भारत में उनको शरण मिली थी। फारस के सम्राट द्वारा प्रताड़ित ईसाइयों को दक्षिण के उदार राजाओं द्वारा शरण दी गई थी। त्र्यंबकोर में पहला चर्च, हिंदू राजा की उदारता के परिणामस्वरूप बना था। बाद में जब फारस को मुसलमानों ने अपने कब्जे में ले लिया और लाखों पारसियों के साथ क्रूरता हुई, तो वे भी भागकर भारत पहुँचे।

हिंदू शासकों ने उन्हें भी खुले दिल से स्वीकार किया। भारत में इनके अग्नि मंदिर स्थापित हुए। आज फारस नहीं, बल्कि भारत पारसियों व उनके प्राचीन धर्म का आश्रय स्थल बना हुआ है। इसका कारण सनातन धर्म की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि एवं वैचारिक उदात्तता रही है, जहाँ प्रारंभ से ही **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** का दर्शन ईश्वर के विविध स्वरूपों के बीच उसकी एकता का प्रतिपादन करता रहा है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण एक ही ईश्वर से सृष्टि व इसकी अनेक दैवी धाराओं को प्रकट होना बताते हैं। बौद्ध धर्म का प्रसार सम्राट अशोक द्वारा शांतिपूर्ण ढंग से हुआ है, तलवार या हिंसा के बल पर नहीं, जैसा कि बाद में इसलाम और ईसाई धर्म ने किया।

अशोक के शिलालेख में स्पष्ट है कि जो अपने धर्म की खातिर दूसरों के धर्म को हानि पहुँचाता है, वह अपने धर्म की सबसे अधिक क्षति करता है। वास्तव में धर्म को लेकर जो विवाद व कलह दृष्टिगोचर होते हैं, वे उसके बाह्यस्वरूप व कर्मकांडीय पक्षों को लेकर हैं, जिनमें प्राय: भिन्नता पाई जाती है; जबकि विभिन्न धर्मों के मूल तक जाएँ तो सबमें आवश्यक एकता एवं सामंजस्य के दर्शन होते हैं। हर धर्म मानव के सामने पूर्णता का आदर्श रखता है, जिसे ईश्वर, गॉड, अल्लाह, ताओ आदि नामों से जाना जाता है। इस आदर्श की प्राप्ति के लिए सभी अपना मार्ग सुझाते हैं और नैतिक शुद्धता तथा साधनात्मक पुरुषार्थ पर बल देते हैं। इस संदर्भ में सभी धर्मों में निहित एकता के दर्शन किए जा सकते हैं।

पारसी धर्म, एकेश्वरवादी धर्म है, जो अहुरा मजदा के रूप में इस सृष्टि के रचयिता और नियंता परमसत्ता का प्रतिपादन करता है, जो सत्य और अच्छाई का पक्षधर है तथा अभिमान, अंधकार और बुराई की पक्षधर आसुरी शक्ति जिसका विरोध करती है। पारसी धर्म अच्छाई की अंतिम विजय पर विश्वास करता है। इसके लिए वह श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ वाणी एवं श्रेष्ठ कर्मों की राह सुझाता है। यहूदी, जेहोवाह के रूप मे एक ईश्वर पर विश्वास करते हैं, जो

अपनी इच्छा पैगंबरों को प्रकट करता है। वह अपने अनुयायियों से नैतिक आचरण की अपेक्षा करता है। वही परम सत्य है, अत: सतत उसको दिल से, अपनी आत्मा से और अपनी पूरी शक्ति के साथ प्यार करें।

यहूदी धर्म के अनुसार मनुष्य ईश्वर की प्रतिकृति है और नैतिकता के माध्यम से मनुष्य ईश्वर तक पहुँच सकता है। ईसाई धर्म न्यू टेस्टामेंट पर आधारित है और ईश्वर के पुत्र, हजरत ईसा की मध्यस्थता की आवश्यकता पर बल देता है और कहता है कि स्वर्ग में अपने परमपिता की तरह पूर्ण बनो। अपने प्रभु को पूरे हृदय और आत्मा से प्यार करो। साथ ही अपने पड़ोसी को अपनी तरह प्यार करो। इससे बड़ा कोई ईश्वरीय आदेश या शिक्षा नहीं है। यह आंतरिक शुद्धता और हृदय की विशालता पर बल देता है। इसलाम धर्म ईश्वर के प्रति समर्पण का धर्म है। एक मुसलमान ईश्वर को अर्पित होता है और मुहम्मद को ईश्वर के अंतिम दूत के रूप में स्वीकार करता है।

अल्लाह के द्वारा पैगंबर मुहम्मद को दिए गए संदेश कुरान में संकलित हैं। ये संदेश कहते हैं कि ईश्वर एक है, दूसरा कोई ईश्वर नहीं है और वह करुणामय तथा दयालु है। धरती पर सब कुछ नश्वर है, लेकिन अल्लाह अपने गौरव-प्रभुता में सदा विद्यमान रहेगा। अपने हृदय से सदैव अल्लाह को विनम्रतापूर्वक पुकारो। उसे भय और तीव्र इच्छा के साथ पुकारो। अल्लाह की दया आपको सन्मार्ग पर ले जाएगी। बुद्ध स्वयं एक अज्ञेयवादी थे और बौद्ध धर्म सत्य को सबसे बड़ी वास्तविकता मानता है, जिसे निर्वाण का नाम दिया। यह स्वतंत्रता की अवस्था है, जिसे सम्यक कर्म, सम्यक वाणी, सम्यक आचरण, सम्यक ध्यान द्वारा अनुभूत किया जा सकता है।

काम, क्रोध, घृणा, भ्रांति आदि से मुक्त साधक दु:खों से मुक्त हो जाता है और निर्वाण को प्राप्त हो जाता है। बौद्ध धर्म कई देशों में प्रतिष्ठित है। चीन में यह ताओ और कन्फ्यूशियस धर्म के साथ मिलकर नया रूप ले चुका है। जैन धर्म भी एक अनीश्वरवादी धर्म है, जो अहिंसा पर विशेष बल देता है और सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र के आधार पर मोक्ष का प्रतिपादन करता है। लाओत्से के अनुसार एक ही परम सत्य है, जो ताओ है। ताओ सबका स्रोत है, सर्वशक्तिमान है। ताओ सृष्टि की आंतरिक व्यवस्था का भी सूचक है। इसी का अस्तित्व है, जो परिवर्तित नहीं होता। सब कुछ इसी के इर्द-गिर्द घूमता है और यह किसी तरह के परिवर्तन और दु:ख से मुक्त है। इसका थोड़ा-सा भी ज्ञान व्यक्ति को परम सत्य के मार्ग पर प्रवृत्त कर देता है।

कन्फ्यूशियस का चिंतन नैतिक आचरण एवं जीवन पर आधारित मानवतावादी धर्म का चिंतन है, जो कर्त्तव्यपरायण जीवन, संतुलन, निस्स्वार्थ भाव, सत्य और निष्ठा से युक्त होता है। इसी तरह हिंदू धर्म, आत्मा में विश्वास, मनुष्य की अंतर्निहित दिव्यता, ब्रह्म के रूप में परमसत्ता तथा आत्मबोध का आदर्श प्रस्तुत करता है और इसके साथ आध्यात्मिक मार्ग द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव तक ले जाता है, जहाँ सभी धर्मों के परम सत्य प्रकट होते हैं और समझ आता है कि सभी धर्म, शाश्वत सत्य तक जाने के मार्ग हैं। सभी आत्माएँ अंत में मुक्त या पूर्णता को प्राप्त होंगी। इस तरह

आत्मा से वरिष्ठ केवल एक ही शक्ति है—परमात्मा। और किसी के सामने हाथ फैलाना, माँगना, याचना करना मनुष्यों को शोभा नहीं देता।

आपसी भाईचारा एवं प्रेम-सद्भाव आध्यात्मिक सिद्धांतों के आधार पर ही संभव हो सकते हैं।

हर धर्म की आध्यात्मिक परंपरा एक ही सत्य का प्रतिपादन करती है, जो विभिन्न धर्मों के बीच संवाद की स्थिति को संभव बनाती है। अध्यात्म सभी धर्मों का सारतत्त्व ग्रहण करता है तथा आत्मबोध के आदर्श को व्यक्ति के सामने रखता है। अध्यात्म हर धर्म के श्रेष्ठ एवं महान तत्त्वों पर विचार करता है और इन्हें जीवन में धारण करने का मार्ग प्रशस्त करता है। दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता भर नहीं, बल्कि सत्य के सभी मार्गों को स्वीकृति का भाव देता है। इनको समन्वित कर जीवन को कैसे समग्र रूप से सुखी, समृद्ध एवं कल्याणमयी बनाएँ—इसे संभव बनाता है।

धर्म के आधार पर आपसी सद्भाव एवं मानवीय एकता का आदर्श इसी पृष्ठभूमि में साकार हो सकता है, अध्यात्म से हीन धर्म के मात्र बाहरी स्वरूप के आधार पर यह संभव नहीं। ❑

आचार्य शंकर का कर्म संन्यास

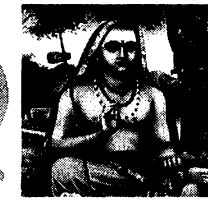

आचार्य शंकर के पिता शिवगुरु असमय ही काल-कवलित हो गए। शंकर अपने पिता से बहुत प्रेम करते थे। अत: पिता की मृत्यु से वे बहुत व्यथित व दु:खी हुए। पर सत्य तो यह भी था कि आचार्य शंकर कोई सामान्य बालक नहीं थे। उनके जन्म-जन्मांतरों के दिव्य संस्कार उन्हें इस असार संसार के माया-मोह से मुक्त हो मुक्तिपथ पर अग्रसर होने को प्रेरित कर रहे थे। उनके भीतर वैराग्य की भावना निरंतर बलवती व अत्यंत ही प्रबल होती जा रही थी।

जब पिता की मृत्यु हुई तो उन्हें दु:ख अवश्य हुआ, पर दूसरी ओर बालक शंकर के मन में यह विचार भी आने लगे कि भगवान उन्हें इस क्षणभंगुर भौतिक शरीर की नश्वरता का बोध कराकर मुक्तिपथ पर चलने को प्रेरित कर रहे हैं। भगवान उनके बंधन काट रहे हैं। इसी कारण से घर की परिधि से बाहर निकलकर संपूर्ण जगत को, बल्कि इस अखिल विश्व-ब्रह्मांड को ही अपना घर एवं जगत के सभी प्राणियों को अपने परिजन-परिवार समझकर कार्य करने का उनका संकल्प और भी प्रगाढ़ हो गया। अपने पिता का दाह कर्म करते समय भी बालक शंकर इस भौतिक जगत व भौतिक शरीर की नश्वरता, क्षणभंगुरता, अनित्यता आदि का ही विचार कर रहे थे।

वे सोच रहे थे कि मनुष्य को एक दिन मरना ही है तो पेट, परिवार व प्रजनन की संकीर्ण परिधि में रहकर ही इस मनुष्य जीवन को क्यों समाप्त किया जाए? वह कीड़े-मकोड़ों की भाँति क्षुद्र, स्वार्थ से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करके क्यों मरे? इस जीवन को तथा इस जीवन के छोटे-छोटे सुखों को ही सत्य व सर्वस्व समझकर उसके पीछे इस जीवन को क्यों समाप्त करे? इस नाशवान शरीर को जब छोड़ना पड़ता है, तब व्यक्ति को बहुत दु:ख होता है; क्योंकि वह अपने भौतिक शरीर व भौतिक सुखों को सर्वस्व व नित्य समझकर जीवनभर उनके प्रति आसक्त रहता है व उस आसक्ति के बंधन से बँधा रहता है।

आचार्य शंकर के मन में विचार आ रहे थे कि श्रेष्ठ तो यही है कि एक महान ध्येय को लेकर सन्मार्ग पर जीवनभर बढ़ते चले जाएँ तथा उसी ध्येय के लिए यदि जीवन को समाप्त करने की आवश्यकता आन पड़े तो भी हम ऐसा करने को सहर्ष तैयार रहें। ऐसा कर सकने पर फिर व्यक्ति को कोई दु:ख नहीं होगा। क्यों? क्योंकि जैसे साँप अपनी रक्षा के लिए केंचुली धारण करता है तथा एक दिन उसी के हेतु केंचुली को छोड़ भी देता है, पर केंचुली छोड़ने में उसे दु:ख नहीं होता; क्योंकि उसे केंचुली से प्रेम नहीं होता है। वह केंचुली के प्रति आसक्त नहीं होता।

ये सभी विचार बालक शंकर के मन में उमड़-घुमड़ रहे थे। माता आर्यंबा तथा अन्य संबंधी बालक उनकी इस प्रवृत्ति को भाँप चुके थे और चिंतित भी रहते थे। शंकर घर-बार छोड़ इस जगत को ही अपना घर एवं समस्त प्राणियों को ही अपना कुटुंब मानकर गृहत्याग कर प्रव्रज्या करना चाहते थे। वे वैदिक धर्म के उद्धार के लिए कुछ करना चाहते थे। शंकर की माता आर्यंबा स्वयं विदुषी थीं और अपने देश व धर्म से प्रेम करती थीं। वे चाहती थीं कि शंकर के हाथों वैदिक धर्म का उद्धार हो, परंतु उनको यह पसंद नहीं था कि शंकर घर-बार छोड़कर काम करे। उनकी इच्छा थी कि शंकर विवाह करे, घर-गृहस्थी चलाए तथा उसके साथ-साथ, जितना हो सके, उतना वैदिक धर्म का उत्थान करने का भी प्रयत्न करे।

माता आर्यंबा का ऐसा सोचना स्वाभाविक भी था; क्योंकि माता का अपने पुत्र से स्वाभाविक प्रेम होता है, लगाव होता है और फिर शंकर के पिता भी तो संसार छोड़ चुके थे। इसलिए माता आर्यंबा ने शंकर को मनाने का हर संभव प्रयास किया। वे बोलीं—"पुत्र! तो क्या तुम अपनी वृद्ध माँ को छोड़कर चले जाओगे?" उन्हें लगता था कि शायद सांसारिक बंधन शंकर को प्रव्रज्या पर न जाने दें, पर सच तो यह है कि नियंता ने, नियति ने जिसे वैदिक धर्म के उद्धार के महान उद्देश्य के लिए इस धरती पर भेजा था, वह किसी बंधन में कैसे बँध सकता था? इसलिए तो उनके भीतर धधक रही वैराग्य की अग्नि में माया-मोह के सारे बंधन स्वयमेव नष्ट हुए जा रहे थे। माता आर्यंबा ने फिर

कहा—"पर बता मेरा श्राद्ध-संस्कार कौन करेगा? फिर कौन देगा, सभी पितरों को पानी?"

आचार्य शंकर ने उत्तर दिया—"मैं करूँगा संस्कार माँ, और मैं दूँगा अपने पितरों को पानी।" माँ ने पूछा—"और फिर तेरे बाद?" वे बोले—"मेरे बाद यह सारा सनातन समाज है, वह तेरा नाम लेगा, तेरे गुण गाएगा, यही है असली श्राद्ध माँ! यदि वैदिक धर्म व समाज नष्ट हो गया तो फिर तू ही बता माँ, कोई दो हाथ, दो पैर वाला तेरे वंश में हुआ भी तो क्या वह तुझे पानी देगा? कभी तेरा नाम लेगा?"

उनकी माँ के पास उनके इन प्रश्नों का उत्तर नहीं था, पर तब भी उन्होंने शंकर की प्रार्थना का उस समय कोई उत्तर नहीं दिया। अंततः नदी में स्नान करते हुए बालक शंकर को एक ग्राह के द्वारा पकड़े जाने पर माता आर्यंबा को उन्हें संन्यास की आज्ञा देनी पड़ी। बालक शंकर गृह त्यागकर निकल पड़े। भला शंकर के विशाल हृदय की भूख, समस्त जगत व वैदिक धर्म की धर्मध्वजा लहराने-फहराने के लिए उनके अंतस् से उठती आकुल पुकार, एक परिवार की छोटी-सी परिधि में कैसे शांत हो सकती थी सो अपनी माता को प्रणाम करके शंकर गुरु की खोज में निकल पड़े।

अंतःकरण में प्रबल वैराग्य की भांवना लिए व प्रचंड आत्मविश्वास की शक्ति लिए शंकर मुक्तिपथ पर, ईश्वर के पथ पर बढ़े चले जा रहे थे। अपने पथ पर बढ़े चले जा रहे शंकर के लिए उनका आत्मविश्वास व ईश्वरविश्वास ही उनके लिए एकमात्र सहारा था। वे पथ पर चलते हुए बड़ी शांति तथा अपने अंतस् में एक प्रकार की चैतन्यशक्ति का अनुभव कर रहे थे और वही उन्हें स्फूर्ति प्रदान कर रही थी।

उन्हें अनुभव होने लगा कि मानो स्वयं भगवान अच्युत उनकी अंतरात्मा में प्रविष्ट हो गए हैं। उसी समय उन्होंने 'अच्युताष्टक' नाम की भक्तिभाव से परिपूर्ण कविता की रचना की तथा अपनी आत्मा की प्रेरणा के अनुसार भगवत् गोविंदपाद के आश्रम की ओर उनसे विधिवत् संन्यास ग्रहण करने के लिए चल पड़े।

मार्ग के कष्टों की चिंता न करते हुए, भूख-प्यास की परवाह न करते हुए वे अपने ध्येय मार्ग पर बढ़े चले जा रहे थे। बाल संन्यासी की ऐसी लगन को देखकर लोग आश्चर्यचकित हो रहे थे। पर शंकर के लिए संन्यास का अर्थ संसार को छोड़कर वन में तपस्या करना कतई नहीं था। उन्होंने तो कर्म संन्यास लिया था, जिसका अर्थ कर्म छोड़ना नहीं, बल्कि कर्म करना था। देश, धर्म व संस्कृति के लिए कर्म करना था, जो सत्य है तथा जो मनुष्य को कर्मफल बंधन में भी नहीं बाँधते, बल्कि कर्म बंधन से मुक्त करते हैं और दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह भी है, फिर शुभ कर्म करने की भी कोई निश्चित आयु तो होती ही नहीं है। जब भी प्रेरणा प्रबल हो, विचार और भावनाएँ पवित्र हों, उसी क्षण उसी शुभ अवसर पर पुण्यकार्य में हाथ डाल देने चाहिए।

निस्संदेह शंकर के संन्यास में अलगाव नहीं, अपनापन था; विरक्ति नहीं, प्रेम था। ऐसे प्रेम में आसक्ति नहीं, बंधन नहीं, मोह नहीं। इसमें संकुचितता, संकीर्णता नहीं, वरन विशालता है। इसमें दुर्बलता व पलायनता नहीं, वरन सबलता व उदारता है। यह व्यक्ति के द्वारा समाज का त्याग नहीं, वरन समाज के लिए व्यक्ति का त्याग है। आज सच कहें तो ऐसे ही संन्यास व संन्यासियों की समाज को आवश्यकता है। कहने को हम यह भी कह सकते हैं कि बालक शंकर ने 8 वर्ष की उम्र में ही संन्यास लेकर क्या वर्णाश्रम व्यवस्था का उल्लंघन नहीं किया?

साधारण व्यवस्था तो यही है कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—इस क्रम से चारों आश्रमों का पालन किया जाए, परंतु सच यह है कि वर्णाश्रम व्यवस्था समाज के कल्याण के लिए समाज द्वारा निर्मित व्यवस्था है। अपने बनाए हुए नियमों के हम स्वामी हैं, दास नहीं। व्यवस्था और नियम समाज के सहयोग के लिए होते हैं। महत्त्व नियम और व्यवस्था का नहीं, अपितु समाज के व्यापक हित का है। यदि समाज के हित के लिए मर्यादा स्थापित करने की आवश्यकता हो, तो मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के समान मर्यादाएँ बाँधी जाती हैं और यदि धर्म की, सत्य की रक्षा हेतु मर्यादा उल्लंघन की आवश्यकता हो, नियम व व्यवस्था के पार व परे जाने की आवश्यकता हो तो योगेश्वर श्रीकृष्ण की भाँति मर्यादाएँ तोड़ी भी जाती हैं।

उल्लंघन और पालन, दोनों के पीछे एक ही भावना है और वह है—समाज का हित, समाज का कल्याण, लोक-कल्याण तथा जगत्-कल्याण। व्यवस्था और नियम साध्य नहीं साधन हैं। साधन का उपयोग तब तक है, जब तक वह साध्य को प्राप्त करने में सहायक हो। केवल लकीर पीटने से क्या लाभ? गृहस्थ और संन्यास दोनों ही साधन हैं, साध्य नहीं। गृह त्यागकर निकले आचार्य शंकर चलते-चलते नर्मदा के पावन तट पर पहुँचे, जहाँ उन्हें योगी गोविंदपाद के दर्शन

हुए। गोविंदपाद शंकर को देखते ही उनकी ओर आकर्षित हुए। कहते हैं कि भगवान की प्रेरणा के अनुसार वे शंकर की बहुत दिनों से बाट जोह रहे थे। शंकर को देखते ही उनका चेहरा खिल गया।

शिष्य तो गुरु की आत्मा की अभिव्यक्ति ही होता है। शिष्य तो अपने गुरु के अंत:करण की प्रवृत्ति का पूरक होता है, फिर सच्चा गुरु और सच्चा शिष्य भला एकदूसरे को कैसे नहीं पहचानेंगे ? सो भगवन् गोविंदपाद ने शंकर को देखकर संतोष की अनुभूति की। गुरु के द्वारा शंकर की विधिवत् संन्यास दीक्षा हुई और शंकर शंकराचार्य हो गए।

गुरु के आदेशानुसार शंकर वैदिक धर्म की धर्मध्वजा फहराने के महान कार्य में प्राणपण से जुट गए। कई वैदिक ग्रंथों का भाष्य लिखने के साथ-साथ उन्होंने विवेक चूड़ामणि जैसे महान आध्यात्मिक ग्रंथों की रचना भी की। उनका आध्यात्मिक जीवन व उनकी आध्यात्मिक रचनाएँ युगों-युगों से लोगों को मुक्ति, मोक्ष व ईश्वर के मार्ग पर चलने को प्रेरित करती रही हैं।

सचमुच यही है वास्तविक संन्यास, यही है कर्म संन्यास, यही है धर्म संन्यास जो जन-जन की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सके। जो जन-जन को अज्ञानता के बंधन से मुक्त कर सके। जो धर्म व संस्कृति के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर सके। आज समय ऐसे ही कर्म संन्यासियों का आवाहन करता नजर आता है। ❑

दुनिया के सर्वाधिक धनाढ्य व्यक्तियों में एक जॉन डी. रॉकफेलर का जन्म सन् 1839 में अमेरिका में हुआ। वे बहुत पढ़े-लिखे तो नहीं थे, पर उनके मन में ऊँचा उठने और तरक्की करने की तीव्र ललक थी। अपनी युवावस्था में ही उन्होंने तेल-व्यवसाय के क्षेत्र में कदम रखे और दिन-रात कड़ी मेहनत करते हुए एक दिन विश्व की सबसे बड़ी तेल कंपनी स्टैंडर्ड ऑइल कंपनी के मालिक बने। पर जीवन में एकतरफा सोच, धन के पीछे की दौड़ और बेतरतीब जीवनशैली ने उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर डाला।

बीमारी के दिनों में बिस्तर पर पड़े-पड़े उन्हें महसूस हुआ कि पैसा ही सब कुछ नहीं है। पैसा रोटी तो दिला सकता है, पर भूख नहीं। पैसा साधन तो हो सकता है, पर साध्य नहीं। उन्होंने निश्चय किया कि जब वो स्वस्थ होंगे तो पैसे का उपयोग श्रेष्ठ और शुभ कार्यों के लिए करेंगे। इसी प्रण के साथ उन्होंने चिकित्सा और शिक्षा के विकास के लिए 55 करोड़ डॉलर (आज की मुद्रा में करीब 2.75 खरब रुपये) दान दिए, जिससे रॉकफेलर फाउंडेशन की स्थापना की गई। यह संस्था आज उनकी मृत्यु के वर्षों बाद भी अच्छे उद्देश्यों के लिए समर्पित है।

धर्म के सामयिक प्रस्तोता श्रीरामकृष्ण परमहंस

श्रीरामकृष्ण परमहंस (1836-1886) के दिव्य जीवन, साधना और सिद्धि का विचार मन में आते ही **'तमसः परस्तात्'** अंधकार से परे ज्योतिर्मय परमपुरुष का **'धाम्ना येन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि'** सहज ही स्मरण हो आता है। समग्र श्रुति का सिद्धांत है—सत्य। वही चिन्मय है, वही आनंद है, वही परमार्थ और वही परम धाम है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस धर्म के नवरूप के प्रस्तोता कहे जा सकते हैं; क्योंकि उन्होंने प्रत्येक धर्म के उत्तमोत्तम तत्त्वों को ग्रहण कर धर्म का एक समन्वयात्मक स्वरूप प्रदर्शित करने का कार्य किया। धर्म का व्यावहारिक रूप भिन्न-भिन्न युगों, परिस्थितियों तथा देश-काल के अनुसार परिवर्तनशील रहा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में जिसकी चर्चा वेदों में बार-बार हुई वह है—**'तत्त्वमसि'** अर्थात तुम ही परम तत्त्व हो।

श्रीरामकृष्ण परमहंस ने इसी धर्म के स्वर को ऊँचा करके कहा था—मनुष्य माने मानहोश अर्थात जिसे अपने स्वरूप का ज्ञान हो। मनुष्य का धर्म है मानवधर्म या स्वधर्म। इस स्वधर्म को पाए बिना मनुष्य को कभी भी शांति प्राप्त नहीं हो सकती। इसी जाग्रति को लेकर श्रीरामकृष्ण परमहंस मनुष्य अर्थात मानुष को 'मानहोश' कहते थे। श्रुति में जिस सत्य, धर्म का प्रतिपादन किया गया, वह अपरिवर्तनीय है, किंतु स्मृतिवचन देश, काल, परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनशील है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस ने इसे और स्पष्ट करते हुए इसकी सामयिक व्याख्या की। **'मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन'**—इस वचन को उन्होंने इस तरह कहा कि जब मन शुद्ध हो जाता है, तभी उस सत्य शुद्ध मन में परम तत्त्व के बोध की सामर्थ्य जाग पाती है। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने धर्म को तर्कों के मकड़ जाल से निकालकर उसकी सहज साधना की।

उनका मानना था कि धर्म वही है, जो अनुभवसिद्ध हो। इसे जीवन में लाना होगा, जीवन में अभिव्यक्त करना होगा। इस ओर जब ध्यान नहीं दिया जाता है, तो रूढ़िवादिता, अनुष्ठान, आडंबर, बाह्याडंबर आदि जीवन में आ जाते हैं। यथार्थ धर्माचरण, धर्मबोध एवं उसी सूत्र को पकड़कर लोग आत्मबोध के लिए प्रयत्नशील नहीं होते।

'अहं ब्रह्मास्मि' का अर्थ है कि मैं पूर्ण हूँ, मैं आत्मा हूँ। दूसरी बात है—**'ईशावास्यमिदं सर्वं'** अर्थात ईश्वर सर्वव्यापी है। जो पारमार्थिक सत्य है, वह सर्वव्यापी है। श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते थे कि सनातन धर्म के अनुसार यह महान तत्त्व जो हमें प्राप्त हुआ, उसे एक ही छलाँग में प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इस तत्त्व को अभ्यास के द्वारा जीवन में संसिद्ध करना पड़ेगा। हमारा यह ज्ञान कभी लुप्त न हो, यह हम चाहते हैं। उसके लिए हमें क्या करना होगा? मैं आज जहाँ हूँ, वहाँ से मुझे सीढ़ी-दर-सीढ़ी क्रमशः धीरे-धीरे ऊपर उठना होगा। उसी के लिए ये साधन, भजन, त्याग, तपस्या आदि की बातें हैं। जितने भी भारतीय शास्त्र हैं, उन सबमें **'एक एव सुहृद्धर्मो'**, **'प्रभवार्थाय भूतानां धर्म प्रवचनम् कृतम्'**, **'नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्म सेतवे, वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम्'** आदि-आदि कहकर जिस आशय को व्यक्त किया गया, वही सनातन धर्म है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस ने विविध मत व मार्गों के द्वंद्व को मिटाने तथा धर्म के सार्वभौमिक स्वरूप की स्थापना का कार्य किया। उन्होंने इस तथ्य का व्यापक प्रचार-प्रसार किया कि द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत एक ही अनुभव की विभिन्न अवस्थाएँ हैं।

स्वामी विवेकानंद ने कहा है—धर्म के इतिहास में श्रीरामकृष्ण परमहंस ने ही यह प्रचारित किया है कि मेरा धर्म और तुम्हारा धर्म अथवा नाना प्रकार के अलग-अलग धर्म वास्तव में कभी नहीं थे। संसार में केवल एक ही धर्म है। अनंतकाल से केवल एक ही सनातन धर्म चला आ रहा है और सदा वही रहेगा और यही एक धर्म भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रीति से प्रकट होता है।

स्वामी विवेकानंद जी ने श्रीमती बुल को सन् 1895 ई. में एक पत्र में लिखा था—मेरे गुरुदेव (श्रीरामकृष्ण परमहंस)

कहते थे कि ईसाई आदि धर्म के नाम मनुष्य-मनुष्य में भ्रातृत्व-प्रेम के होने में बहुत रुकावटें डालते हैं। पहले हमें इन्हें तोड़ने का यत्न करना चाहिए। वास्तव में श्रीरामकृष्ण परमहंस ने धर्म को इस रूप में वर्णित किया कि धर्म मनुष्य के हृदय का विस्तार करता है।

वे इस बात पर पूर्णतः दृढ़ थे कि धर्म किसी को कुछ भी मान लेने को नहीं कहता, स्वयं परख लेने को कहता है। उन्होंने किसी नए धर्म की स्थापना नहीं की, अपितु उसी सत्य सनातन धर्म को, जो एकदेशीय होने के कारण शनैः-शनैः रूढ़िवादी बन गया था—उसे नए रूप में योग, भक्ति, ज्ञान और कर्म के सर्वोच्च भावों के साथ सम्मिलित करके प्रस्तुत किया। उन्होंने कभी किसी धर्म की निंदा नहीं की, बल्कि 'सभी धर्म सत्य हैं' इस अनुभवजन्य सत्य के प्रवक्ता बने रहे।

श्रीरामकृष्ण परमहंस ने धर्म का जो समन्वयात्मक रूप समाज में प्रसारित किया, उसमें उन्होंने सहजता से कहा—देखो, मन-मुख एक करो। यह बिलकुल नई बात है, पर है अत्यंत गंभीर। वास्तव में मानव 'मन-मुख' की एकता नहीं कर पाता। कहता कुछ और करता कुछ तथा सोचता कुछ और है। इस सिद्धांत को उन्होंने 'भावमुखी अवस्था' कहकर सिद्ध किया।

श्रीरामकृष्ण परमहंस धर्म के शिखर पर आरूढ़ हो चुके थे। उन्होंने दान, करुणा, दया सदृश भावों को एकाकार करते हुए धर्म के लिए—'शिव ज्ञान से जीव सेवा' का सिद्धांत दिया, जिसके अनुसार मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार के लिए हिमालय की कंदराओं में जाने की आवश्यकता नहीं है और न ही साकार-निराकार की उपासना के चक्राकार बंधन में फँसने की। शिव ज्ञान से जीव सेवा के द्वारा प्रत्येक मानव ईमानदारी से हर जीव को स्वयं का रूप मानकर धर्म का पालन कर सकता है।

धर्म की सुदृढ़ता का एक प्रबल साधन त्याग भी है। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने 'रुपया माटी है और माटी रुपया' कहकर यह समझाने का प्रयास किया कि आज के युग की प्रमुख व्याधि कंचन है। श्रीरामकृष्ण परमहंस धर्म के समन्वयात्मक रूप के पक्षधर थे। ऐसा करने के लिए उन्होंने सभी धर्मों के प्रति सद्भाव एवं सहिष्णुता की बात की। वे केवल समालोचना ही नहीं करते रहे, बल्कि सभी धर्मों के प्रति अत्यंत गवेषणात्मक एवं जिज्ञासात्मक दृष्टि के साथ उन्होंने यह संदेश दिया—'जितने मत, उतने पथ' और इसी संदेश ने उन्हें विश्वमंच पर एक 'समन्वयाचार्य' के रूप में प्रतिष्ठित किया।

उन्होंने वास्तव में सभी मतों को प्रोत्साहित करने के लिए उन मतों पर चलकर, उनकी परीक्षा करते हुए एक ही सत्य पर पहुँचने के अनंतर अपने अनुभव के आलोक में यह सिद्धांत उपदिष्ट किया कि समन्वय का भाव भारतीय अध्यात्म का सनातन सत्य है। वे सर्वत्र एकत्व एवं समदर्शन की अनुभूति में प्रतिष्ठित हो गए थे। इसीलिए एक बार गंगा के घाट पर एक माँझी द्वारा दूसरे माँझी की पीठ पर किए हुए आघात की वेदना को उन्होंने स्वयं अपनी पीठ पर महसूस किया था।

श्रीरामकृष्ण परमहंस सभी मतों का समन्वय करते हुए कहते थे—अरे! द्वेष-बुद्धि क्यों रखोगे? समझो कि वह भी एक मार्ग है, भले ही अशुद्ध क्यों न हो। घर में जाने के लिए जैसे अलग-अलग दरवाजे रहते हैं, मुख्य दरवाजा रहता है, खिड़की वाला दरवाजा रहता है और शौचालय साफ करने के लिए स्वच्छताकर्मी के जाने के लिए भी एक अलग रास्ता रहता है। जो जिस भी रास्ते से क्यों न जाए, घर के भीतर जाने पर सभी एक ही स्थान पर पहुँचते हैं। किसी के साथ द्वेष नहीं रखना है।

श्रीरामकृष्ण ने वेद और तंत्र का भी समन्वय किया। वे साकार, निराकार, अनेक रूपरूपाय ईश्वर के लिए किसी सीमा को नहीं मानते। वे कहते थे इन सब रूपों में मानने पर भी ईश्वर की कोई इति नहीं है। ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। भारतीय साधना का यह चिरंतन भाव है। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने संसार और अध्यात्म, दोनों में समन्वय का मार्ग खोजा। उन्होंने सांसारिक वास्तविकताओं को नकारने में विश्वास नहीं किया। उनके मन में जाति, कुल, मान का भी कोई अभिमान नहीं था, बल्कि मात्र एक पवित्र दृष्टिकोण विद्यमान था।

उनका संदेश था—सहायता करो, लड़ो मत, परभाव ग्रहण करो न कि परभाव विनाश करो अर्थात समन्वय और शांति न कि मतभेद और कलह। वे कहते थे—अतीत में जितने संप्रदाय थे, मैं उन सबको सत्य मानकर स्वीकार करता हूँ। यह कहने में उनका तर्क भी ध्यान देने योग्य है—यदि कहो कि उन धर्मों में बहुत-सी गलतियाँ हैं, कुसंस्कार हैं, तो मैं कहता हूँ कि वे किस धर्म में नहीं हैं। सभी धर्मों में

हैं। सभी सोचते हैं कि मेरी घड़ी ठीक चल रही है। जिसका जो भाव है, उसके उसी भाव का मैं सम्मान करता हूँ। इसीलिए कहता हूँ कि यह मत कहो कि मेरा ही मार्ग सच्चा है और सब मिथ्या है।

इस प्रकार धर्म के क्षेत्र में श्रीरामकृष्ण परमहंस ने व्यर्थ के वाद-विवाद को दूर कर धर्मों का समन्वय भी कर दिया। वे भावग्राही जनार्दन भाव से मनुष्य की आंतरिक भावना की ओर ध्यान देते थे। विश्व की सभी सत्ताओं के प्रति उनके हृदय में साम्य उदारमयी, भावमुखी अवस्था थी। इस उदारता के कारण ही उद्घोष करते हुए वे कहते थे—"पोखर के रुके हुए और उथले पानी में ही शाक-पात पनपता है, परंतु नदी के बहते हुए और गहरे पानी में शाक-पात नहीं होता।"

संकीर्णता से ही संप्रदाय का गठन होता है। उदार बुद्धिवाला संप्रदायवाद में नहीं फँसता। इसलिए उनके प्रिय शिष्य सांस्कृतिक पुरोधा स्वामी विवेकानंद ने कहा था—"भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस धर्म के अवतार थे और उनके जन्म के साथ ही एक नवीन युगधर्म का उद्भव हुआ।" ❑

महाभारत में कथा आती है कि एक बार श्रीकृष्ण, बलराम और सात्यकि यात्रा पर निकले, पर गंतव्य तक पहुँचने से पूर्व ही रात हो गई और उन्होंने रात एक जंगल में बिताने का निर्णय किया। जंगल घना और भयानक था। अतः तीनों ने मिलकर निर्णय किया कि वे बारी-बारी से पहरा देंगे। प्रथम प्रहर में जागने की बारी सात्यकि की थी और अभी प्रहर प्रारंभ ही हुआ था कि एक राक्षस ने सात्यकि पर हमला कर दिया। सात्यकि अपने शौर्य के लिए प्रसिद्ध थे, इसलिए उन्हें राक्षस के दुस्साहस पर क्रोध आ गया। पर सात्यकि क्रोध में उस राक्षस से जितना जूझते, उसका शरीर उतना ही बड़ा होता जाता, अंततः थक-हारकर सात्यकि ने उस राक्षस से हार मान ली।

सात्यकि के बाद पहरा देने की बारी बलराम की थी और उनके साथ भी इस घटना की पुनरावृत्ति हुई। अंत में जब भगवान श्रीकृष्ण की बारी आई तो राक्षस ने पूर्व की भाँति उन पर भी प्रहार किया, किंतु भगवान उस पर क्रोध करने के बजाय हँसते-हँसते उससे लड़ने लगे। इस बार राक्षस अपने को हारता देखकर उत्तेजित होने लगा। वह जितना खीजता, उतना ही उसका शरीर छोटा होता जाता और धीरे-धीरे वह एक मच्छर के बराबर रह गया।

भगवान श्रीकृष्ण ने उसको पकड़कर अपने अंगवस्त्र से बाँध लिया और सुबह होने पर उसको सात्यकि एवं बलराम को दिखाते हुए बोले—"देखो! यह रहा तुम्हारा राक्षस। यह और कुछ नहीं, बल्कि हमारा क्रोध ही है। जितना क्रोध बढ़ता है, उतनी ही असुरता बढ़ती है और जैसे-जैसे सात्त्विकता बढ़ती है, वैसे-वैसे दुराचार का अंत होता है।"

चेतना की शिखर यात्रा – 222

विडंबना और तथ्य

विगत अंक में आपने पढ़ा कि सत्तर के दशक में साधना-पथ पर आरूढ़ अनेक साधक यौगिक सिद्धियों से प्रभावित थे व साथ ही उन सिद्धियों को प्राप्त करने की चेष्टा में भी लगे थे। पूज्य गुरुदेव साधकों की मनोदशा जानते थे, इसलिए उन्होंने उन्हें इस प्रकार की उपलब्धियों पर अधिक ध्यान न देकर साधना के मूल उद्देश्य परिष्कार में अपना समय व श्रम लगाने की सलाह दी। स्वतः ही फैल रहे मायाचार के व्यापार में उन दिनों दिल्ली शहर के निकट एक महिला योगी द्वारा सामूहिक शक्तिपात का ढोंग रचा जा रहा था। माता के नाम से प्रचलित उन योगिनी के अनुयायी सन् 1976 में शांतिकुंज के एक साधना सत्र में अन्य साधकों को बहकाने के उद्देश्य से सम्मिलित हुए, किंतु पूज्यवर के दिव्य संरक्षण में वे अपने मनसूबों में कामयाब न हो सके। महाराष्ट्र की भी एक घटना उन दिनों सामने आई। वहाँ एक तथाकथित संत द्वारा जैन धर्म में महावीर की साधना विधि के प्रसिद्ध विधान जाति स्मरण का प्रयोग कर लोगों को उनके पिछले जन्म की यात्रा कराने का आकर्षण दिया जा रहा था। जिसके परिणामस्वरूप वे लोगों के वर्तमान जीवन को अस्त-व्यस्त कर देते थे। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ..

पिछले जन्म की याद

यों तो पूरा परिवार आस्तिक और आध्यात्मिक रुझान वाला था, लेकिन रंजना की आस्था ज्यादा ही गहन थी। वह सत्संग, साधना शिविरों में जाया करती, उनमें बताए जाने वाले ध्यान, जप-तप आदि का अभ्यास करती और प्राचीन तथा आधुनिक संतों के साहित्य भी पढ़ती थी। सत्संग संपर्क के प्रति इसी रुझान के चलते रंजना जाति-स्मरण के उपदेष्टा एक धर्मगुरु योगी अद्वैत आनंद के पास गई। वह उपदेष्टा पूना में ओशो के प्रवचन सुनकर अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने के लिए इस विधि का उपयोग कर रहा था। रंजना उस गुरु की बातों से प्रभावित हुई; क्योंकि जाति-स्मरण के पक्ष में दलील ही जबरदस्त दी गई थी। अद्वैत आनंद का कहना था कि हम हर जन्म में एक ही गलती को बार-बार दोहराते हैं। यदि पिछले जन्म का स्मरण रहे तो उन गलतियों से सावधान रह सकते हैं।

यह किसी ने नहीं पूछा कि पिछले जन्मों की याद रहने से गलतियों से बचा जा सकता था तो प्रकृति या परमात्मा ने ही उन स्मृतियों पर परदा क्यों डाल दिया? लाभ होता तो स्मृतियाँ बनी रहनी चाहिए थीं। फिर इसी जन्म में मोह, लोभ, क्रोध और मद आदि कारणों से हम उन्हीं गलतियों को दोहराते रहते हैं। योगी अद्वैत के प्रतिपादनों को लेकर किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया। किसी के मन में यह प्रश्न उठा भी नहीं। रंजना के मन में भी नहीं।

इस विचार-विवेक को दरकिनार कर रंजना ने जाति स्मरण के प्रयोग शुरू किए। शुरू के अनुभव अच्छे लगे, उनमें मजा आया। अनुभव पिछले जन्म की स्मृतियों के फिर जाग उठने के थे। जाति-स्मरण के शिक्षक द्वारा प्रक्षेपित कल्पनाओं को करना कठिन था, लेकिन उनमें रोमांच था। अलौकिक घटनाओं से भरपूर फिल्म या उपन्यास की तरह कुछ दिन तक तो ये प्रयोग अच्छे लगे। किंतु एक मुकाम पर जाकर रंजना हिल गई। स्मृतियों में अथवा प्रक्षेपित दृश्यों में उसने देखा कि आस-पास कई पुरुष बैठे हैं, साजिंदे साज-बाज सजाए हुए हैं, गीत-संगीत चल रहा है और वह नृत्य कर रही है। नर्तकी के इस वेश में उसे अगला चरण याद आया। इस दृश्य में वह देह-व्यापार में लगी हुई है। संरक्षक के नाम पर एक बड़ा जागीरदार है, उसकी उपपत्नी का

दरजा मिला हुआ है। उससे आगे वर्णन नहीं किया जाने जैसा नारकीय जीवन। उन बिंबों और भावों ने रंजना को बुरी तरह विचलित कर दिया। जाति-स्मरण के कथित प्रयोग में वह शांत, निष्पंद लेटी हुई थी। प्रयोगकर्त्ता इसे योगनिद्रा और पिछले जन्म के द्वार पर खड़े होने की अवस्था बताते थे। जो भी हो, वह चौंककर उठ बैठी, जैसे किसी ने झिंझोड़कर जगा दिया हो अथवा कोई भयावह दृश्य देख लिया हो। बुरी तरह पसीना-पसीना हुई रंजना की हालत बिगड़ी हुई थी। अनुभूति ने रंजना को ऐसी बुरी तरह आहत कर दिया कि वह विक्षिप्त हो उठी।

परिवार के लोगों ने समझा कि योगी अद्वैत ने कोई तांत्रिक प्रयोग किया है। उन्होंने योगी को आड़े हाथों लिया, यह प्रयोग रोकने के लिए दबाव डाला। योगी ने कुछ उपचार भी किया, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। रंजना पूर्वजन्म की स्मृतियों में जाने के नाम पर जिस मानसिक या आत्मिक ढलान पर फिसली, वह रुक नहीं रही थी। पतिता जीवन की यातनाओं और स्मृतियों का जंजाल किसी प्रेत की तरह अपना पाश कसे ही जा रहा था। रंजना पागल हो गई, उसे मानसिक चिकित्सालय में भरती कराया गया और योगी अद्वैत को रंजना के परिवारवालों की दर्ज कराई रिपोर्ट के आधार पर पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। करीब छह सप्ताह तक रंजना का इलाज हुआ। हालत कुछ सुधरी तो सही, लेकिन पहले की तरह सहज और स्वस्थ नहीं हो सकी। करीब डेढ़ साल बाद परिवार के लोग रंजना को लेकर हरिद्वार आए। शांतिकुंज में एक साधना शिविर में सम्मिलित हुए। ब्रह्मसंध्या और गायत्री-उपासना का अभ्यास किया। तब कहीं जाकर रंजना की स्थिति सुधरने लगी। उसके स्वजनों ने गुरुदेव के सामने अपनी और रंजना की आप बीती विस्तार से कही। गुरुदेव ने उन्हें भगवान की कृपा से सब ठीक हो जाने का आश्वासन दिया। साथ ही यह भी कहा कि अध्यात्म मार्ग पर अधीरता से काम नहीं लेना चाहिए। गुरु या शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट साधना का धैर्यपूर्वक अभ्यास ही कल्याणकारी है।

गुरु भगवान से सावधान

रंजना प्रसंग के उल्लेख का आशय यह है कि उन दिनों शिष्य बटोरने और अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए आतुर गुरु भगवानों की बाढ़ आई हुई थी। वृंदावन में एक महात्मा सख्यभाव की भक्ति का प्रचार कर रहे थे। उस प्रचार की ओट में विकृत व्यभिचार को बढ़ावा मिला। कुछ समय तो ठीक-ठाक चला। फिर पीड़ित व्यथित लोगों ने उनके खिलाफ मुहिम छेड़ी। मुहिम ने धीरे-धीरे जोर पकड़ा और जुलाई, 1980 में व्यभिचार, दुराचार के ऐसे मामले सामने आए कि उन महात्मा की गिरफ्तारी के बाद ही यत्किंचित् निराकरण हो सका।

साधना-उपासना की इन मनमानी विधियों तक ही बात सीमित नहीं थी। इससे आगे बढ़कर दूसरे संतों को लांछित करने और उनकी कमजोरियों को—चाहे वे आरोपित ही हों, उछालने की प्रकृति भी जोर पकड़ रही थी। नीति-अनीति को किनारे कर किसी व्यवसाय में आगे बढ़ने के लिए जो गलाकाट होड़ मचती है, उसी का प्रभाव धर्मक्षेत्र में भी दिखाई दे रहा था। इस प्रभाव की बानगी देखिए कि शिरडी में साँईबाबा की समाधि के बारे में अचानक चर्चाएँ होने लगीं। उनकी सिद्धियों, चमत्कारी घटनाओं और उनसे लाभान्वित होने के अनुभवों के विवरण आने लगे। साँईबाबा की ख्याति तब फैलना ही शुरू हुई थी कि पुट्टापर्ती के सत्य साँईबाबा के कुछ भक्तों ने शिरडी के बाबा पर दावा जताना शुरू किया। उनका कहना था कि यह स्थान सत्य साँईबाबा की खोज है। समाधि के प्रथम दर्शन उन्होंने ही किए थे और साँईबाबा की आकृति, स्वभाव उनके जीवनवृत्त और समकालीन घटनाओं की जानकारी भी उन्होंने ही लोगों को दी थी। जो लोग शिरडी की समाधि पर अपना अधिकार जता रहे हैं अथवा सत्य साँईबाबा के प्रभाव को नकार रहे हैं, वे गलत हैं। इधर शिरडी के अनुयायियों ने कहा कि सत्य साँईबाबा हमारे इष्ट-आराध्य के यश और प्रभाव का लाभ उठाने की चेष्टा कर रहे हैं। दोनों पक्षों में तर्क-वितर्क और दावों-प्रतिदावों की जबरदस्त होड़ मच गई। श्रद्धालु जन इस या उस खेमे में बँट गए अथवा तटस्थ रहकर चिंता जताने लगे।

साँईबाबा ही क्यों? तमिलनाडु में एक योगी ने कांची मठ के पास एक गाँव अर्नाकुडम में अपने आप को महायोगी श्रीअरविंद का अवतार घोषित कर दिया। स्थानीय लोग कुछ प्रतिकार करते, इससे पहले ही वे अर्नाकुडम छोड़कर चले गए। अजय गोविंद नाम के इन धर्मध्वजी ने वाराणसी में कुछ समय ठिकाना बनाया और एक फ्रेंच पर्यटक महिला को श्रीमाँ का अवतार घोषित कर लापता हो गए। याद रहे इस घटना के करीब तीन वर्ष पहले ही 1973 में अरविंद आश्रम की श्रीमाँ का निधन हुआ था। अजय गोविंद के मित्रों ने और

बाद में काशी के पंडितों ने भी यह स्मरण कराते हुए कहा था कि तीन साल पहले दिवंगत हुई आत्मा शरीर छोड़ने में पैंतीस वर्ष पहले ही नया शरीर कैसे धारण कर सकती है?

विस्मय विमुग्ध कर देने और धर्मक्षेत्र की दुर्दशा उजागर करने वाली एक और घटना है। श्रीमाँ के निधन के सालभर बाद नलगोडा (आंध्रप्रदेश) की एक किशोरी कमला रेड्डी को उसके अभिभावकों ने श्रीमाँ का अवतार घोषित कर दिया। कमला रेड्डी को लेकर उसकी माँ अलेझा और पिता वीरा रेड्डी पांडिचेरी भी गए थे। कहते हैं कि इस परिवार का आश्रम या श्रीअरविंद के दर्शन से कभी कोई संबंध नहीं रहा। न जाने क्या सोचकर उन्होंने अपनी बेटी को श्रीमाँ का अवतार बताना शुरू किया। कमला रेड्डी का नाम बदलकर मीरा (श्री अरविंद आश्रम की माताजी का नाम मीरा अलफांसो या मीरा रिचार्ड से मिलता-जुलता) रख दिया और वे उसे लेकर जगह-जगह घूमने लगे। 1976 में ये लोग शांतिकुंज भी आए थे और गुरुदेव से मिलने का प्रयत्न भी किया था। किसी भी व्यक्ति से मिलने में कभी कोई संकोच नहीं करने वाले गुरुदेव ने कमला अथवा मीरा रेड्डी के प्रति अतिथि की मर्यादाओं का निर्वाह करते हुए विदा कर देने के लिए कह दिया था। शांतिकुंज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं ने उन लोगों को गुरुदेव से भेंट नहीं हो पाने की विवशता जताते हुए हाथ जोड़ लिए। मदर मीरा के नाम से वह विदुषी इन दिनों जर्मनी में हैं और उनके अनुयायियों की वहाँ अच्छी खासी संख्या है।

चमत्कारों और सिद्धियों के बल पर अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने वाले इस दौर में विचार, विवेक और युक्तिसंगत मान्यताओं का ही आग्रह रखने वालों की कमी भी नहीं थी। तर्क, तथ्य और प्रमाण की कसौटी पर खरा उतरने के बाद ही वे उन मान्यताओं को स्वीकार करते थे। 1976 की गुरुपूर्णिमा के दो दिन बाद संभवत: 14 जुलाई को शांतिकुंज में महात्मा आनंद स्वामी का संदेश आया। परिजनों को याद होगा कि आस्था और विश्वास की दृष्टि से आर्यसमाजी होते हुए भी आनंद स्वामी गायत्री की माँ के रूप में आराधना करते थे। स्वामी दयानंद सरस्वती की वैदिक संध्या विधि के अनुसार नियमित उपासना करने के साथ वे गुरुदेव द्वारा शोधित और उपदिष्ट आदिशक्ति के सगुण साकार रूप को भी मानते थे। संन्यासी होते हुए भी गुरुदेव को अपना आध्यात्मिक मार्गदर्शक, गुरु मानने वाले आनंद स्वामी इस विधि-निषेध को मान्यता नहीं देते थे कि उन्हें किसी गृहस्थ योगी का शिष्यत्व नहीं स्वीकार करना चाहिए। उनके समकालीन आर्यसमाजी संन्यासी नारायण स्वामी ने एक बार टोका भी था कि गृहस्थ योगी को अपना गुरु मानकर आप वैदिक अनुशासन का उल्लंघन कर रहे हैं। क्या यह क्षम्य है? आपको इसका प्रायश्चित करना पड़ेगा?

दंड भोग लूँगा

आनंद स्वामी ने कहा आप इसे अनुशासन तोड़ना कहते हैं। मेरी विनम्र मान्यता है कि युगऋषि पंडित श्रीराम जी को अपना गुरु मानने से कोई पाप होता है तो मैं उसका दंड भुगतने के लिए तैयार हूँ। आप मुझे गायत्री को माता और श्रीराम जी को अपना गुरु कह लेने दीजिए। महात्मा आनंद स्वामी की श्रद्धा-संवेदना के कई प्रसंग हैं। यथा संन्यासी होते हुए भी गुरुदेव को प्रणाम करने में गर्व अनुभव करते थे, मंच से लेकर सार्वजनिक स्थलों पर और भेंट, मुलाकात के समय भी गुरुदेव को ऊँचे आसन पर बैठे देखना चाहते थे। आश्चर्य की बात तो यह कि गुरुदेव भी उन्हें इसी प्रकार का आदर-सम्मान देते थे। प्रसंग चल रहा था 1976 में गुरुपूर्णिमा के आस-पास का। महात्मा आनंद स्वामी हरिद्वार आए थे और सप्त सरोवर क्षेत्र में ही एक आश्रम में रुके हुए थे। उन्होंने संदेश भिजवाया कि शांतिकुंज आना चाहते हैं, गुरुदेव का दर्शन करने। साथ ही यह अनुनय भी कि पता नहीं इसके बाद अपना शरीर रहे-न-रहे और इन्हीं आँखों से दर्शन हो पाए न हो पाए।

गुरुदेव ने संदेशवाहक को यथोचित उत्तर दिया। महात्मा आनंद स्वामी ने अगले दिन आने की इच्छा व्यक्त की थी, लेकिन गुरुदेव उसी दिन संध्या होने से पहले आनंद स्वामी के आश्रम की ओर रवाना हो गए। उनके साथ शांतिकुंज के दो वरिष्ठ कार्यकर्त्ता भी गए थे। गुरुदेव जब स्वामी जी के पास पहुँचे तब वे आश्रम के कुछ वानप्रस्थियों और कर्मचारियों से घिरे बैठे थे। कोई सामाजिक, आध्यात्मिक चर्चा चल रही थी। स्वामी जी बेंत से बनी कुरसी पर बैठे थे। उनका शरीर भारी था। गुरुदेव को आश्रम में आते देखा तो भावविह्वल होकर उठने की चेष्टा करने लगे। उठने में देर लगी तब तक गुरुदेव उनके पास पहुँच गए और हाथ जोड़कर नमस्कार कर चुके थे।

स्वामी जी इस बीच ब्रह्मचारियों को देखने लगे, जैसे उठाने में सहायता करने के लिए कह रहे हों। ब्रह्मचारियों की मदद से वे उठे और भावभरे कंठ से गुरुदेव का अभिवादन

करते हुए बोले—''आप महान हैं, वंदनीय हैं। मैं तो आपके पास आने की सोच ही रहा था। संदेश इसलिए भिजवाया कि आप मेरे लिए थोड़ा समय निकालें, पर आप तो खुद दौड़े चले आए प्रभु।'' कहते-कहते आनंद स्वामी का गला रुँधने-सा लगा। इस पर गुरुदेव ने कहा—''विराग की परम स्थिति में पहुँचे स्वामी जी आप दुनियादारों की तरह क्यों बोलते हैं। यहाँ हम दोनों में अंतर ही क्या है? कौन किसके पास आता-जाता है।''

इस बीच किसी आश्रमवासी ने गुरुदेव के लिए भी वहीं एक कुरसी लगा दी थी। आत्मीय औपचारिकता के बाद आनंद स्वामी ने कहा—''शरीर अब ज्यादा साथ देता नहीं लग रहा। वेद भगवान के बताए चारों आश्रमधर्म निभा लिए। जिन प्रणीत भावों के धरती पर उतरने की आशा सँजोए जीवन आरंभ किया था, वे साकार होते नहीं लगते। हालात और बिगड़ते जा रहे हैं।'' गुरुदेव उनकी व्यथा सुनते रहे। स्वामी जी ने जमाने की धारा और समाज में आ रहे पतन-पराभव के बारे में अपने मनोभाव प्रकट किए। जिस आधार पर आशा सँजोई जा सकती है, वह धर्मक्षेत्र ही विकृतियों और प्रवंचनाओं से आच्छादित होता जा रहा है। स्वामी जी ने यह कहते हुए अपनी व्यथा को विराम दिया। फिर कुछ रुक कर वही बोले—''माँ गायत्री सब ठीक करेगी। जिस परांबा ने मुझ जैसे वरदराज को विज्ञजनों में बैठने लायक बना दिया, वही भगवती अपने एक भृकुटि विलास से इस जगत् को भी सही मार्ग पर आरूढ़ कर देगी। उसकी एक निःश्वास धर्मक्षेत्र में छाए कालिख को पोंछकर रख देगी।''

गुरुदेव लगभग आधा घंटा स्वामी जी के पास रहे। दोनों में जो संवाद हुआ, उसका सार लिखना तो मुश्किल है। चर्चा पूरी होते-होते गुरुदेव ने कहा—''मैं आपके पास शांतिकुंज आने का अनुरोध करने आया हूँ। आप वहाँ पधारें। पिछली बार आप जब आए थे, तब से अब तक शुरू किए गए प्रयासों को देखें और उन्हें अपना आशीर्वाद दें।''

कहकर गुरुदेव अपने स्थान से उठे। उन्हें उठता देख आनंद स्वामी ने कहा—''मन तो नहीं करता आपको जाने देने के लिए, लेकिन उसे दबाना पड़ता है। क्या किया जाए? परमात्मा ने आपको यह घनीभूत अंधकार भगाने के लिए नियुक्त किया, निमित्त बनाया है। हम लोग भी आपके अभियान के निमित्त हैं।'' कहते हुए आनंद स्वामी ने अपने आसन से उठकर हाथ जोड़े, अभिवादन किया, सिर झुकाया और गुनगुनाने से लगे—'एक तुम्हीं आधार सद्गुरु।' (क्रमशः)

दादू दुकान के मालिक थे। ज्यादा-से-ज्यादा पैसा कमाना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। एक दिन भारी बरसात हो रही थी, ऐसे में दादू सब कुछ छोड़कर पैसे गिनने में लीन हो गए। काफी समय बाद उनकी दृष्टि ऊपर गई तो उन्होंने देखा कि उनके गुरु वर्षा में भीग रहे हैं। उन्होंने दौड़कर उनको दुकान के अंदर किया और अपनी भूल के लिए क्षमा-याचना करने लगे।

उनके गुरु मुस्कराते हुए बोले—''दादू! मुझे तो तूने देख लिया, पर उस भगवान को कब देखेगा, जो हर समय तेरे सामने खड़ा है, पर तेरी दृष्टि पैसों से हटती ही नहीं।'' अपने गुरु की बात दादू के हृदय में तीर की तरह चुभ गई और वो भक्ति के मार्ग पर निकल पड़े। कालांतर में वे ही संत दादू दयाल के रूप में प्रसिद्ध हुए।

जल संरक्षण की परंपरागत प्रक्रिया

पुरातन समय में जहाँ जलाशय होता था, लोग वहीं बसते थे, लेकिन अब इसके विपरीत जहाँ हम बसते हैं, वहाँ हम पानी ले जाना चाहते हैं। बहुमंजिली इमारतें इसका बड़ा उदाहरण हैं। प्रकृति व पानी ने सबकी व्यवस्था की थी, चाहे वो पहाड़ी हो या मैदानी इलाका। पहाड़ों में बादल गाँवों को तर रखते थे तो तालाब मैदानों को। राजस्थान, जहाँ पानी तलहटी में था, वहाँ इस तरह की परिस्थितियों में कुओं की व्यवस्था थी। इतना ही नहीं खेती-बारी की फसलें भी प्रकृति द्वारा तय थीं। जहाँ पानी नहीं था, वहाँ वर्षापोषित फसलों को साधा गया और जहाँ सतही पानी उपलब्ध था, वहाँ धान, गेहूँ ने जगह बनाई। आज इसके विपरीत हम खेतों में पानी के लिए पाताल पहुँच गए और अब इसलिए कुएँ भी हाथ से निकलने को हैं। यह सब इसलिए हुआ; क्योंकि हमने पानी की नई व्यवस्था कायम की, जिसमें वितरण और उपयोग पर ज्यादा जोर था न कि संरक्षण पर।

हमने पानी के लिए नदियों से नहरों का जाल तो बनाया, पर उसके पानी के स्तर की चिंता नहीं की। इसके परिणामस्वरूप देश की छोटी-बड़ी अनेक नदियाँ साथ छोड़ने को बैठ गई हैं। मतलब अब ये चलने के योग्य नहीं बची हैं। उसका कारण साफ है कि नदियों के जलागम अब इस हाल में नहीं हैं कि वे पहले की तरह पानी को जोड़ सकें। कारण साफ है—उनमें वनाच्छादित क्षेत्रफल घटा है। फलस्वरूप वर्षा के पानी के सोखने की क्षमताएँ घट गई हैं। इसका दूसरा नुकसान बाढ़ के रूप में भी झेलना पड़ रहा है। वन प्राकृतिक बाँध होते थे, जो वर्षा के पानी को रोकने में अहम भूमिका निभाते थे, पर इसके अभाव का परिणाम साफ दिखाई देता है।

पचास साल पहले नदियों में जो पानी की चाल और मात्रा थी वो गंभीर रूप से घट गई हैं। इसलिए ऐसी परंपराएँ थीं कि जलागम वनाच्छादित रहें और स्थानीय समुदाय उसके संरक्षण से जुड़ा रहे। वन नीति ने इस रिश्ते को खतम किया और वन विभाग इस परंपरा को समझाने में असफल रहा।

ये नदियाँ ही हैं, जो समुद्र से पहले अपनी यात्रा में भूमिगत जल को भी संचित करती हैं। इनके गिरते स्तर ने भी भूमिगत जल पर संकट खड़ा कर दिया है। हमारी परंपरा का ये बड़ा हिस्सा रहा है कि हमने जल, जंगल, जमीन को हमेशा पूज्य दृष्टि से देखा है और इसलिए इनकी अवहेलना करना एक अपराध माना जाता रहा है। इस परंपरा की अनदेखी ने इन्हें एक वस्तु के समकक्ष बना दिया और एकतरफे दोहन ने इन्हें गर्त में पहुँचा दिया। परंपराओं के पीछे हमेशा संरक्षित उपयोग का नियम रहा है और इनके छिन्न-भिन्न होने से संसाधन भी साथ छोड़ने में ही बेहतरी मान रहे हैं।

प्रकृति का पानी बार-बार एक ही इशारा करता रहा है कि मेरे उपयोग के साथ-साथ मेरे संरक्षण की व्यवस्था पर भी चिंता करो। पानी को परंपरागत तरीकों से ही जोड़ा जा सकता है। कोई भी पानी चाहे वो हिमखंडों में हो या फिर नदी, कुओं और तालाबों में आखिरकार वर्षा की ही देन है। परंपरा की इन कड़ियों को हमने समाप्त किया है और इसलिए अब पानी हमारे साथ नहीं है। पानी को पाना है तो परंपराओं पर ही जाना होगा। पानी बनाने के लिए विज्ञान चमत्कार नहीं दिखा सकता; क्योंकि विज्ञान हमेशा विकल्प तलाशता है। मतलब कुओं से अगर पानी घटा तो पाताल में जाने के संयंत्र ढूँढ़े जाते हैं। गुणवत्ता खतम हुई तो प्यूरीफायर ने जगह बनाई या फिर बोतलों का व्यापार खड़ा हो गया। विज्ञान की दिशा हमेशा विकल्पों पर केंद्रित रही है और यही मुख्य कारण रहा कि हम संसाधनों को जुटाने के प्रति गंभीर नहीं हुए, बल्कि विकल्प तलाशते रहे। अब जब विज्ञान पानी को लेकर असमंजस में है तो हमें परंपराओं पर ध्यान केंद्रित करना होगा। जल संचयन तभी सार्थक होगा, जब पानी के लिए हम परंपरागत मार्गों को चुनें। हर घर, हर गाँव के लिए चुनौती का समय है; क्योंकि यदि आज हमने इस संकट को नहीं समझा तो मानकर चलिए हम फिर कहीं भी जाएँ, पर पानी हमारे साथ नहीं जाने वाला है।

पानी से आर्थिक विकास का सीधा संबंध है। कुछ साल पहले फिक्की के सर्वे के अनुसार देश की 60 फीसद कंपनियों का मानना है कि जल संकट ने उनके कारोबार को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। इस सर्वे को हाल ही में चेन्नई की कंपनियों द्वारा उनके कर्मचारियों को दिए गए दिशा निर्देश से जोड़कर देखने की जरूरत है। इस दिशा निर्देश में कहा गया है कि सभी कर्मचारी अपने घर से ही काम करें। जल संकट के चलते ऑफिस न आएँ। सन् 1962 में भारत की प्रति व्यक्ति जीडीपी चीन से दुगनी थी और इसकी प्रति व्यक्ति स्वच्छ भूजल की हिस्सेदारी चीन की 75 फीसद थी। सन् 2014 में भारत की स्वच्छ भूजल की प्रति-व्यक्ति हिस्सेदारी चीन की 54 फीसदी ही रह गई। जबकि इस अवधि में चीन की प्रतिव्यक्ति जीडीपी भारत से तीन गुना ज्यादा हो चुकी है।

पिछले साल शिमला की रोजाना जलापूर्ति 4.4 करोड़ लीटर से कम होकर 1.8 करोड़ लीटर तक जा पहुँची है। पानी के अभाव में पर्यटन को भी भारी नुकसान हुआ है। पानी नहीं होगा तो पर्यटन नहीं होगा, उद्योग अपने कच्चे माल को भी तैयार नहीं कर पाएँगे। लिहाजा देश की सुदृढ़ अर्थव्यवस्था बनाने का सपना मूर्तरूप नहीं ले सकता है। सन् 2016 में विश्व बैंक के एक अध्ययन में चेताया गया था कि अगर भारत जल संसाधनों का कुशलतम इस्तेमाल और ऐसा करने के उपायों पर ध्यान नहीं देता है तो सन् 2050 तक उसकी जीडीपी विकास दर छह फीसद से भी नीचे गिर सकती है। हाल ही में नीति आयोग की रिपोर्ट में बताया गया कि देश के कई औद्योगिक केंद्रों वाले शहर अगले साल तक शून्य भूजल स्तर तक जा सकते हैं। तमिलनाडु और महाराष्ट्र जैसे उद्योगों से भरे-पूरे राज्य अपनी शहरी आबादी के 53-72 फीसद हिस्से की ही जलापूर्ति सुनिश्चित करने में सक्षम हैं।

देश की जीडीपी में खेती की 17 फीसदी हिस्सेदारी है। पंजाब देश के चावल उत्पादन में 35 फीसद और गेहूँ उत्पादन में 60 फीसद की हिस्सेदारी रखता है और वहाँ भूजल स्तर हर साल आधे मीटर की दर से गिर रहा है। अभी देश में ज्यादातर सिंचाई डूब प्रणाली के तहत की जाती है, जिसमें खेत को पानी से लबालब कर दिया जाता है। यह गैरजरूरी है। पौधों की जड़ों तक पानी पहुँचने के लिए इजरायल की तर्ज पर ड्रिप और स्प्रिंकलर प्रणाली को व्यापक स्तर पर विकसित करने की जरूरत है। तभी हम 'पर ड्रॉप मोर क्रॉप' को चरितार्थ कर पाएँगे। कम पानी वाली फसलों और प्रजातियों के इस्तेमाल को बढ़ावा देने की भी आवश्यकता है। एक किलो चावल पैदा करने में 4500 लीटर पानी खरच होता है, जबकि गेहूँ के लिए यह आँकड़ा 2000 लीटर है। ऐसी स्थिति में हमें सचेत हो जाना चाहिए और समय रहते उचित कदम उठाने चाहिए। ❑

बोधिसत्व बटेर की योनि में थे। एक दिन एक कौवे ने उनसे उनके स्वस्थ शरीर का रहस्य पूछा।

बोधिसत्व बोले—

अपिच्छा अप्प चिन्ताय अविदूल गमन च।
लद्धा लद्धेन यापेन्तो धूलो तेनास्मि वासस॥
अपिच्छस्य ह पोसस्स अप्प चिन्तिसुखस्स च,
सुसंगहित पमाणस्य कुत्तो सुख सुदानिय॥

अर्थात मैं बार-बार खाने की इच्छा नहीं करता और जो मिल जाता है, उसी से गुजारा करके प्रसन्न रहता हूँ। ऐसे ही आहार वाले व्यक्ति जिन्हें भोजन की मात्रा का सही भान रहता है, वे स्वस्थ रहते हैं।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 143

मानवीय चेतना का समीक्षात्मक अध्ययन

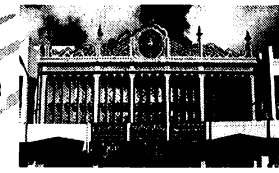

मानव जीवन के विकास की यात्रा काल-कालांतर की विकट चुनौतियों का सामना करते हुए इक्कीसवीं सदी के भी दो दशक पूरे कर चुकी है। इस विकास यात्रा में मनुष्य ने अपने प्रयास-पुरुषार्थ से इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल आदि सभी आयामों में स्वयं को अत्यंत समृद्ध-शक्तिशाली और इस धरा पर अन्य प्राणियों के जीवन की तुलना में अग्रिम पंक्ति में ला खड़ा किया है, परंतु विगत कुछ दशकों की मानवीय विकास यात्रा की गहराई से पड़ताल करने पर परिणामस्वरूप जो भयानक संकट और समस्या मानव जीवन पर मँडराती दिख रही है, वह अत्यंत चिंताजनक है।

वह संकट है—मानव के अस्तित्व का। वह संकट है—मानव की चेतना के ह्रास का। वह संकट है—मानव जीवन के संवेदनहीन बनने का। गिरता स्वास्थ्य, टूटते संबंध, बढ़ती मनोव्याधियाँ, बिखरती-टूटती मूल्य संरचना—इन सभी लाइलाज-सी दिखती समस्याओं के मूल में मानव चेतना का संकट मौजूद है। मानवीय संवेदना के अभाव में संवेदनहीन होता जा रहा इनसानी जीवन आज हजारों-लाखों-करोड़ों-अरबों तथाकथित इनसानों के बीच इनसानियत को तरसता हुआ कहीं भी देखा जा सकता है।

समय रहते इस दिशा में यदि नहीं चेता और चेताया गया तो निकट भविष्य में वह दिन भी आ जाएगा, जब संपूर्ण मानव जाति अपने जीवन अस्तित्व को बचाने और इनसान में इनसानियत को खोजने का निरर्थक प्रयास कर रही होगी। युगऋषि, युगद्रष्टा परमपूज्य गुरुदेव ने मानवता पर आने वाले इस महासंकट को अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से पहले ही जान लिया था।

यही कारण है कि उन्होंने अपने विचारों, सिद्धांतों, अभियानों और अन्य सभी गतिविधियों की दिशा मानवीय चेतना के पोषण की ओर उन्मुख रखी है। यह तथ्य आश्चर्यजनक किंतु शत-प्रतिशत सत्य है कि पूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का कोई भी कोना पकड़ो, कभी भी, कहीं भी; उतने अंशों में हमारे जीवन में मानवीय चेतना का विकास एवं परिष्कार सुनिश्चित है।

मानव चेतना को संवर्द्धित, पोषित और परिष्कृत करके विकसित और उत्कृष्ट बनाने वाले विचारों-सिद्धांतों के स्रोत हमें ऋषि-परंपरा में आद्यतन मिलते हैं, परंतु अपनाने योग्य व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक कसौटी पर खरा समग्र चिंतन; वह भी युगानुरूप जनमानस की आवश्यकता के अनुरूप; सिर्फ परमपूज्य गुरुदेव के चिंतन से ही उपलब्ध हो सकता है।

मानवीय जीवन के अस्तित्व संकट और मानव चेतना के समग्र उत्थान की दिशा में जागरूक एवं प्रेरित करने तथा अस्तित्व संकट के समाधान हेतु उठने वाले कदमों को सही दिशा प्रदान करने के उद्देश्य से एक अत्यंत विशिष्ट एवं उपयोगी शोधकार्य संपन्न किया गया है।

यह शोधकार्य आज से लगभग दो दशक पूर्व युगतीर्थ शांतिकुंज द्वारा पोषित विश्वविख्यात शोध संस्थान ब्रह्मवर्चस के माध्यम से शोधार्थी भावना द्विवेदी द्वारा सन् 2001 में संपन्न किया गया है। योग विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में पी-एच.डी. उपाधि हेतु संपन्न किए गए इस शोध अध्ययन को शोधार्थी ने ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के निदेशक एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण, मार्गदर्शन एवं प्रो. डॉ0 ईश्वर भारद्वाज के कुशल निर्देशन में पूरा किया है।

इस महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का विषय है—**'आचार्य श्रीराम शर्मा के वाङ्मय में मानव चेतना—एक समीक्षात्मक अध्ययन।'** विवेचना, विश्लेषण एवं समीक्षात्मक दृष्टि पर आधृत इस महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक शोध अध्ययन को शोधार्थी द्वारा क्रमशः आठ अध्यायों में वर्गीकृत कर पूरा किया गया है। यहाँ शोध की समग्र जानकारी की दृष्टि से सभी अध्यायों की विषयवस्तु का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना समीचीन एवं उपयोगी प्रतीत होता है।

प्रथम अध्याय—विषय प्रवेश है। इसके अंतर्गत मानव जीवन एवं चेतना के प्रथम उद्घोषक साहित्य वेद और वैदिक

परंपरा का विवेचन करते हुए वैदिक विचारणा में मानव चेतना के स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। वैदिक ऋषियों ने अपने तपोमय साधना अनुसंधानों में मानव जीवन की समस्याओं पर गहराई से विचार किया एवं समाधान की दृष्टि से मानव चेतना के सूक्ष्मतम, गूढ़ आयामों का अनावरण किया है। उन्होंने मानव चेतना में समाहित दिव्यता, असीमता, संभावना और ज्योतिर्मय सत्य का बोध प्राप्त कर विश्व मानवता को सर्वप्रथम मानव जीवन की अमूल्य गरिमा का ज्ञान कराया है।

द्वितीय अध्याय है—वैदिक परंपरा के ऋषि एवं विचारक। आदिकाल से अब तक वैदिक परंपरा को सृजित, पोषित और समृद्ध बनाने वाले ऋषियों, दिव्य पुरुषों, चिंतकों की सुदीर्घ परंपरा रही है। सभी ने अपने-अपने काल में मानव चेतना के विकास एवं समस्याओं के समाधान के सूत्र प्रसारित किए हैं।

इस अध्याय की अंतर्वस्तु में इन्हीं ऋषियों-चिंतकों को सम्मिलित करके उनके चिंतन वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला गया है। शोधार्थी ने सर्वप्रथम वैदिक ऋषिगण का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा स्थापित वैदिक परंपराओं के संवाहक प्रमुख चिंतकों, समकालीन विचारकों और वैदिक परंपरा प्रखर प्रकाशक विभूति आचार्य श्रीराम शर्मा को अपनी विवेचना में सम्मिलित कर वैदिक परंपरा के ऋषि चिंतन का बृहत् स्वरूप इस अध्याय में प्रस्तुत किया है।

तृतीय अध्याय है—मानव चेतना का अनुसंधान। इसके अंतर्गत मानव चेतना के मार्मिक पक्षों का बोध प्राप्त करने के लिए उपयोगी एवं आवश्यक बिंदुओं का विवेचन है। जिज्ञासा, मार्गदर्शन, अनुसंधान के लिए आवश्यक तैयारी, अनिवार्य अनुबंध एवं मानव चेतना का दर्शन और विज्ञान इस अध्याय के मुख्य बिंदु हैं।

किसी भी नवीन ज्ञान अथवा अनुभूति की उत्पत्ति जिज्ञासा से प्रारंभ होती है। व्यक्ति जिज्ञासा को शांत करने के लिए मार्गदर्शन (गुरु) प्राप्त करता है। तत्पश्चात मार्गदर्शन के निर्देशन में आवश्यक तैयारी (साधना) एवं अनुबंध (तप, संयम) के द्वारा मानव चेतना के ज्ञान-विज्ञान का बोध प्राप्त करता है।

चतुर्थ अध्याय—'चेतना की अंतर्यात्रा' है। इस अध्याय में मानव चेतना के अनुसंधान क्रम में जीवन के विभिन्न स्तरों पर प्रकट होने वाले चेतना के ऊर्जा केंद्रों का सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन किया गया है। कुंडलिनी शक्ति के रूप में स्थित ऊर्जाकोश, चेतना के स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर में स्थित आयाम, पंचकोश, सप्तचक्र व ब्राह्मी स्थिति जैसे बिंदुओं के माध्यम से मानव चेतना का आंतरिक एवं आध्यात्मिक वैभव इस अध्याय को अत्यंत रोचक और ज्ञानवर्द्धक बना देता है।

पंचम अध्याय है—मानव चेतना के संपूर्ण विकास हेतु नवीन प्रणाली। इस अध्याय में मानव चेतना के आद्यतन विकास का समीक्षात्मक दृष्टि से मूल्यांकन, समय की आवश्यकता और आचार्य जी द्वारा प्रवर्तित महत्त्वपूर्ण चिंतन को प्रस्तुत किया गया है। वैदिक सूत्रों एवं सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए परमपूज्य गुरुदेव ने मानव चेतना की समस्या के समाधान हेतु जो मार्ग प्रशस्त किया है, वह पुरातन व नवीन का, स्थूल और सूक्ष्म का, विज्ञान और अध्यात्म का अनुपम समन्वय करते हुए विश्व मानवता के चेतनात्मक विकास का सर्वथा नूतन जीवन दर्शन बनकर सामने आया है।

परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार—शाश्वत की स्थापना के लिए पुरातन का नवीनीकरण आवश्यक है। उनके द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के सिद्धांत में मानव चेतना के सर्वांगीण विकास एवं मौजूदा समस्याओं के सार्थक समाधान की स्पष्ट रीति-नीति का विस्तृत विवेचन मिलता है।

षष्ठ अध्याय है—विकसित मानव चेतना की विभूतियाँ। शोधार्थी ने इस अध्याय में मानव चेतना के विकास के फलस्वरूप स्वाभाविक रूप से व्यक्तित्व के विभिन्न तलों पर प्रकट होने वाली लौकिक-अलौकिक विभूतियों का विवेचन किया है। मानव जीवन में इन विभूतियों का होना उसकी आंतरिक चेतना के विकास का अकाट्य प्रमाण माना जाता है।

अध्ययन की सुगमता के लिए शोधार्थी ने विभूति शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए पौराणिक व ऐतिहासिक विभूतिवान योगियों के दृष्टांत प्रस्तुत किए हैं। तत्पश्चात यम, नियमादि की साधना से प्राप्त विभूतियों व अन्य योग अध्यात्म मार्ग की विभूतियों की विवेचना करते हुए इन विभूतियों के दार्शनिक और वैज्ञानिक पहलुओं का समीक्षात्मक चिंतन प्रस्तुत किया है।

सप्तम अध्याय है—मानव चेतना का रूपांतरण। इस अध्याय के अंतर्गत मानव चेतना के रूपांतरण की आवश्यकता एवं अनिवार्यता, भागवच्चेतना का अवतरण, रूपांतरण का प्रारंभ, मानव चेतना के विभिन्न तलों पर रूपांतरण

की प्रक्रिया का विस्तृत विवेचन करते हुए पूर्णरूप से रूपांतरित मानव चेतना के विराट स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है।

यह अध्याय सुस्पष्ट रूप से वर्तमान मानव जीवन पर छाए अस्तित्व संकट और चेतनात्मक पतन से उत्पन्न ध्वंसकारी समस्याओं की ओर सचेत करते हुए इसके निवारणार्थ कारगर प्रक्रिया को रूपांतरित मानव चेतना की उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत करता है।

अष्टम अध्याय—उपसंहार है। इस अध्याय में शोध अध्ययन का सारांश एवं निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए शोधार्थी ने इसके महत्त्व, आवश्यकता और उद्देश्य की विवेचना प्रस्तुत की है। साथ ही मानव चेतना के संदर्भ में परमपूज्य गुरुदेव के ऋषि चिंतन को वर्तमान समय की अत्यंत प्रासंगिक समस्या और सार्थक समाधान के रूप में प्रस्तुत कर भावी विश्व मानवता को अपने अस्तित्व संरक्षण की संजीवनी प्रदान की है। ❑

हर बड़े आयोजन के पीछे महान त्याग और बलिदान की कथा छिपी हुई होती है। आज अपने संगठन और परिवार का इतना विस्तार और अपार वैभव है, पर किसी समय इसको स्थायित्व और मजबूती प्रदान करने के लिए परमपूज्य गुरुदेव को तिल-तिल कर के जलना पड़ा, सामाजिक तिरस्कार और आर्थिक दुर्दिनों का सामना भी करना पड़ा। अपने पास की समस्त 1000/-की पूँजी लगाकर पूज्य गुरुदेव ने अखण्ड ज्योति के रूप में एक बिना विज्ञापन, बिना नफे वाली आध्यात्मिक पत्रिका प्रारंभ की। छह माह भी नहीं गुजरे थे कि जमा पूँजी समाप्त हो गई और 'न माँगने' की नीति होने के कारण 'न कुछ' के बराबर आय हुई। परिणामस्वरूप पूज्य गुरुदेव 15 रुपये माहवार किराये के मकान को छोड़कर 4 रुपये प्रतिमाह वाले छोटे से कमरे में आ गए। छपने वाले कागज के स्तर को कम किया गया और काम करने वाले आधे से अधिक व्यक्तियों को हटाकर शुक्रवार को उनका काम पूरी रात लालटेन की रोशनी में करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

इस त्याग और संघर्ष के पीछे एक ही भाव था, कि क्यों किसी से याचना करें? यदि उनका कार्य धर्मविरुद्ध है तो उसका नष्ट हो जाना ही उचित है अन्यथा नरसी मेहता वाले 'साँवलिया शाह' इस जहाज को भी पार लगाएँगे। सत्य और धर्म की रक्षा करने तो भगवान को सातवें लोक से उतरकर आना पड़ता है और इस अखण्ड ज्योति की ज्योति को अखण्ड करने वे स्वयं उतरे चले आए। पत्रिका उत्तरोत्तर लोकप्रिय होती गई और ग्राहक संख्या बढ़ने लगी। धीरे-धीरे आर्थिक विपन्नता का दौर भी समाप्त हुआ। आज इस परिवार के प्रत्येक सदस्य को पूज्य गुरुदेव के वे तितिक्षा के दिन भूलने नहीं चाहिए; क्योंकि उन दिनों के कारण ही आज का यह विस्तार संभव हो पाया है।

परिष्कार का स्वर्णिम अवसर हैं कठिनाइयाँ

मनुष्य जीवन एक ऐसा प्रवाह है, जिसकी अपनी विशेषताएँ हैं और अपनी जटिलताएँ भी। अभी भी उसमें कहीं पशुता के भाव विद्यमान हैं, यहाँ तक कि असुरता के अंश भी इसमें यदा-कदा प्रकट होते रहते हैं। इसके साथ ही वह दैवी संभावनाओं से युक्त भी है, जो उसकी पूर्णता की चाह के रूप में परिलक्षित होता है। इन सबके बीच मानवीय संवेदनाएँ उसे परिवार एवं समाज के एक उपयोगी घटक के रूप में जीने व कार्य करने के लिए प्रेरित भी करती हैं।

इस तरह एक व्यक्ति मानवता, देवत्व, पशुता और असुरता का एक विचित्र-सा मिश्रण है, इसकी न्यूनाधिकता व्यक्ति के स्वभाव एवं नियति को तय करती है तथा इसी के अनुरूप उसका आचरण-व्यवहार निर्धारित होता है। इनसान की बड़ी खूबी यह है कि वह निम्नतर प्रकृति का अतिक्रमण करते हुए अपने दैवी स्वरूप को पा सकता है। वह नीचे गिरते हुए भी दुगनी उछाल के साथ ऊपर उठने की क्षमता रखता है, वह राह में फिसलते हुए भी आगे बढ़ने की शक्ति भी रखता है। वह सामयिक आसुरी आवेश के बावजूद मानवीय संवेदनाओं के साथ जीने में सक्षम है और सारी मानवीय सीमाओं एवं दुर्बलताओं को पार करते हुए आध्यात्मिक जीवन जीने का दम-खम रखता है। पशुता से मानवता और नर से नारायण बनने का मार्ग उसके लिए खुला हुआ है।

ऐसा करने के लिए जहाँ वह खड़ा है, उसका ईमानदारीपूर्वक मूल्यांकन करते हुए अपनी यथास्थिति से परिचित होने व आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहिए। जिस अनुपात में व्यक्ति जीवन के सत्य को स्वीकारता जाता है, उसी अनुपात में वह अंदर से मुक्त भी होता जाता है। इसके विपरीत अपने अधूरे सच के प्रति अड़ियल रवैया, दुराग्रह और हठधर्मिता व्यक्ति की समस्त संभावनाओं पर तुषारापात कर देते हैं। यहाँ पर मानव जीवन से जुड़ी असीम संभावनाएँ सीमित हो जाती हैं, इसके विकास का पथ अवरुद्ध हो जाता है तथा जीवन विडंबनाओं से ग्रस्त हो जाता है।

इससे उबारने के लिए प्रकृति-परमेश्वर का न्याय विधान समय-समय पर अपना कार्य करता है, जो व्यक्ति को कुछ विषम परिस्थितियों के बीच डाल देता है। कुछ अग्निपरीक्षाओं से होकर वह गुजारता है। यह प्रत्यक्षत: ईश्वर का क्रूर एवं निर्मम विधान प्रतीत हो सकता है, लेकिन इसके पीछे उसकी असीम करुणा एवं कल्याण का ही भाव रहता है।

ऐसे में जीवन का हर विषम मोड़ एवं दु:ख-कष्ट व्यक्ति को उसकी अपूर्णता से अवगत कराता है तथा पूर्णता की ओर बढ़ने को प्रेरित करता है। हर असफलता व्यक्ति को अपनी गलतियों या पीछे हुई भूल-चूक का स्मरण दिलाने के लिए आती है कि आगे सजग रहते हुए इनसे पार होना है, लेकिन यदि व्यक्ति प्रकृति के इन इशारों को नहीं समझ पाता, अपनी हठधर्मिता पर सवार रहता है, तो फिर ईश्वर का कृपा विधान भी उसके लिए अभिशाप बन जाता है। जीवन की पहेली सुलझने के बजाय और उलझती जाती है। जीवन अंतहीन दु:ख, कष्ट, पीड़ा, प्रताड़ना एवं विषाद का दहकता दावानल बन जाता है। जो विषाद रणक्षेत्र के बीच अर्जुन को योग की ओर ले जाता है, वह व्यक्ति को दुर्योग की ओर ले जाने वाला साबित होता है। ऐसे में आध्यात्मिक जीवन की संभावनाएँ तो दूर, व्यक्ति मानवीय जीवन की गरिमा से भी हाथ धो बैठता है। सार रूप में अपने सच का सामना न कर पाने की त्रासदी का दंश व्यक्ति पग-पग पर झेलने के लिए विवश हो जाता है।

अत: जीवन में ऐसी चुनौतियों, कठिनाइयों या अग्नि-परीक्षाओं से भागें नहीं, वरन इन्हें अपने परिष्कार का अवसर मानें। अपना सत्य कितना ही वीभत्स क्यों न हो, इसका साहस के साथ सामना करें, इसको अपना हितचिंतक मानते हुए इसमें निहित दैवी संदेश को समझें, इससे मिले सबक को सीखें। सीखे हुए पाठ को गाँठ बाँधकर जीवन में धारण करते हुए फिर से जीवन की नई ऊँचाइयों की ओर बढ़ चलें। यही जीवन के आंतरिक उत्कर्ष और बाहरी विकास का राजमार्ग है। ❑

कैसे करें उत्तीर्ण परीक्षाएँ

जीवन में आगे बढ़ने के लिए कदम-दर-कदम पर हमें परीक्षाएँ देनी ही पड़ती हैं। कुछ परीक्षाओं के बारे में हमें जानकारी होती है, लेकिन कुछ परीक्षाएँ अनजाने में ही हमें देनी पड़ती हैं। इन परीक्षाओं में से कुछ परीक्षाओं में हम सफल होते हैं तो कुछ परीक्षाओं में असफल। फिर भी हमारे लिए वो परीक्षाएँ ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती हैं, जो हमें देनी पड़ती हैं, जैसे—लिखित परीक्षा, व्यावहारिक परीक्षा, इंटरव्यू, प्रायोगिक परीक्षा आदि।

इन परीक्षाओं में पास होने के लिए हम तैयारी करते हैं और यदि उनमें असफल होते हैं, तो दु:खी होते हैं यदि सफल होते हैं, तो इनकी खुशी मनाते हैं; लेकिन अंक प्राप्त करने की इन परीक्षाओं के साथ-साथ ही हमारे व्यक्तित्व की भी यह परीक्षा होती है कि हम कितनी मात्रा में अपने तनाव, चिंता, परेशानी, गुस्सा आदि को व्यवस्थित कर पाते हैं। यदि इन्हें आसानी से व्यवस्थित कर पाते हैं, तो हम अपनी पढ़ाई को भी व्यवस्थित कर लेते हैं और यदि इन्हें व्यवस्थित नहीं कर पाते, तो अपनी पढ़ाई में ठीक से सफल नहीं हो पाते। इसके साथ ही हम कितनी ईमानदारी के साथ पढ़ाई करते हैं और परीक्षा देते हैं, यह भी महत्त्वपूर्ण है और यह हमारी परीक्षा का ही एक अंग है।

जो लोग पढ़ाई नहीं करते, वे फाइनल परीक्षा में पास होने के लिए शॉर्टकट अपनाने की कोशिश करते हैं व नकल करने की कोशिश करते हैं। वे उन प्रश्नों को ही तैयार करते हैं, जिनकी परीक्षा में आने की अधिक संभावना होती है, बाकी प्रश्नों को वे छोड़ देते हैं। ऐसे लोग केवल परीक्षा में पास होने के लिए पढ़ाई करते हैं, लेकिन जो ईमानदारी के साथ मेहनत करते हुए पूरे वर्ष भर पढ़ते हैं, वे परीक्षा में केवल पास होने की तैयारी नहीं करते, बल्कि परीक्षा में अधिक-से-अधिक अंक प्राप्त करने की कोशिश भी करते हैं और कभी-कभी उनकी यह ईमानदार कोशिश रंग भी लाती है।

किसी भी विद्यार्थी के लिए परीक्षा का समय बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। उस समय यदि उसका मानसिक संतुलन बना रहता है व ठीक ढंग से पढ़ पाता है, अपने तनाव, चिंता को व्यवस्थित करने के साथ-ही-साथ समय को ठीक ढंग से व्यवस्थित कर पाता है, तो वह अपनी परीक्षा में सफल होता है। दुर्भाग्यवश कुछ विद्यार्थी इस समय प्राय: तनाव में आ जाते हैं। इस तनाव के कारण उनके स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है, जिसके कारण वे कभी-कभी बीमार भी हो जाते हैं और सालभर पढ़ने के बावजूद परीक्षा के समय वे ठीक से पढ़ नहीं पाते और इसका असर उनके परीक्षा परिणामों पर दिखने लगता है।

प्राय: हर विद्यार्थी के लिए उसकी परीक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण होती है, वह उस परीक्षा को पास करके आगे बढ़ना चाहता है और जब वह ऐसा नहीं कर पाता, तो वह निराश हो जाता है। यह निराशा तब और बढ़ जाती है, जब उस परीक्षा को पास करने की दोबारा कोई संभावना न हो, लेकिन इसके बावजूद याद रखना चाहिए कि कोई भी परीक्षा जीवन की अंतिम परीक्षा नहीं होती। हर परीक्षा के बाद दूसरी परीक्षा हमारा इंतजार कर रही होती है और इसके लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

हमें यह समझना चाहिए कि परीक्षाओं से जुड़ी हुई ज्यादा अपेक्षाएँ ही हमें तनाव देती हैं और हमें तब दु:खी करती हैं, जब हम उन अपेक्षाओं में खरे साबित नहीं होते। अपेक्षाएँ जितनी कम होंगी, उतने ही हम कम दु:खी होंगे। जहाँ तक परीक्षा में पास होने या सफल होने का सवाल है, तो यह पूरी तरह से हमारे नजरिए और प्रयास पर निर्भर करता है। हमारा नजरिया जितना व्यापक होगा, उतनी ही गहराई से हम चीजों को समझ पाएँगे और उनमें सफल भी हो पाएँगे।

अक्सर लोग अपनी जिंदगी में बड़ी-बड़ी ख्वाहिशें पाल लेते हैं, आगे बढ़ने के लिए बड़ी-बड़ी मंजिल तय करने का निश्चय कर लेते हैं, लेकिन उस समय वे न तो ऐसा करने के लिए अपनी क्षमता का आकलन करते हैं और न ही ख्वाहिश व मंजिल के अनुरूप उन पर आगे बढ़ पाते हैं। ऐसे में अपेक्षा के अनुरूप सफलता उन्हें नहीं मिल पाती।

इस बात को समझाने के लिए एक छोटा-सा प्रसंग है—एक बार अकबर की बेगम उनसे रूठ गईं। अकबर ने इस तरह रूठने का जब उनसे कारण पूछा तो उन्होंने कहा—"मेरा भाई सेना में मेहनत और जोखिम का काम कर रहा है और आप यहाँ बीरबल को मंत्री बनाए बैठे हैं। अब आप मेरे भाई को मंत्री बनाइए।" इस पर अकबर ने युक्ति से काम लिया। बेगम साहिबा को सीधा जवाब देने के बजाय उन्होंने अगले दिन बेगम के सामने ही अपने साले साहब को बुलाया और उससे कहा—"अमुक बंदरगाह पर एक जहाज आया है, तुम वहाँ जाकर यह पता लगाओ कि वह जहाज कहाँ से आया है और वह किसका है?" इसके बाद अकबर ने यही कार्य बीरबल को भी दिया।

कुछ दिनों के बाद दोनों के बंदरगाह से वापस लौटने की सूचना मिली। अकबर ने बेगम के सामने ही दोनों को अपने पास बुलवाया। सबसे पहले उन्होंने अपने साले से जहाज के बारे में जानकारी देने को कहा। साले साहब ने बताया कि जहाज श्रीलंका से आया है और यह जहाज बैजू सेठ का है। जब अकबर ने अपने साले साहब से यह प्रश्न किया कि यह जहाज कहाँ जा रहा है? तो उसने जवाब दिया कि आपने इतनी ही जानकारी माँगी थी, इसलिए मैं केवल उन्हीं के बारे में पता लगाकर आया हूँ। अब अकबर ने बीरबल से बंदरगाह के जहाज के बारे में जानकारी देने को कहा। बीरबल ने कहा—"जहाज श्रीलंका से आ रहा है, बैजू सेठ का है। उसमें कीमती रत्न व आभूषण लदे हैं। जहाज मायानगरी जाएगा। सेठ 1000 स्वर्णमुद्राओं का राजस्व अदा कर चुका है।" बीरबल का जवाब खतम होने पर अकबर ने बेगम की ओर देखा, तो उनकी नजरें झुकी हुई थीं और उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ।

यहाँ पर परीक्षा कोई अंक प्राप्त करने की नहीं थी, बल्कि यह बीरबल और अकबर के साले साहब की एक व्यावहारिक परीक्षा थी, जिसमें बीरबल उत्तीर्ण हुए। सवाल का जवाब तो दोनों ने दिया, दोनों ने प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए बंदरगाह तक जाने के लिए बराबर दूरी तय की, दोनों का जवाब भी सही था, लेकिन प्रश्न से संबंधित उपयोगी जानकारी बीरबल की थी। इसलिए उनका पद भी ऊँचा व महत्त्वपूर्ण था।

देखा जाए तो परीक्षा के सवाल या जीवन की समस्याएँ मकड़ी के जाल व उलझे हुए धागे की तरह होते हैं। वास्तव में वे उतने जटिल नहीं होते, जितना हम अपनी अनुभवहीनता या हड़बड़ी में उन्हें बना बैठते हैं। अत: इन्हें सुलझाने के लिए पहले उसकी उलझन को समझना और उसे सुलझाने वाले सिरे को तलाश करना बहुत जरूरी है। जीवन की परीक्षाएँ कभी भी ढर्रे पर चलकर नहीं, नकल करके नहीं, बल्कि होश के साथ, सूझ-बूझ व समझ के साथ दी जाती हैं और तभी इन परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने का आनंद भी आता है। ❑

एक प्रसिद्ध उद्योगपति ने एक संत से दीक्षा ली। संत के अनेकानेक अवलंबी थे, जो उनके आश्रम पर सतत आगमन करते। उनमें से कुछ ने उद्योगपति को परेशान करना आरंभ कर दिया कि अब तो हम और आप गुरुभाई हैं। हमारे बच्चे को आप अपने यहाँ नौकरी दिलवा दें। अन्य लोगों की भी ऐसी ही अपेक्षाएँ थीं। उनमें से कइयों के लिए उद्योगपति ने कुछ व्यवस्था भी बना दी तो धीरे-धीरे ऐसे लोगों की भीड़ उनके पास बढ़ने लगी। संत को इसका पता चला तो उन्होंने उद्योगपति को बुलाकर बोला—"बेटा! अध्यात्म की सार्थकता आचरण और धर्म की सार्थकता कर्म से है। जो लोग सांसारिक अपेक्षाएँ लेकर तुम्हारा समय लें, उनका दीक्षा लेना-न-लेना बराबर ही है। मेरी ओर से कोई दबाव अनुभव न करते हुए न्यायोचित निर्णय लो।" बात उद्योगपति की समझ में आ गई और उन्होंने केवल उपयुक्त व्यक्तियों को मदद देना ही स्वीकार किया।

युगगीता –250

जीवन को मात्र भोगने का माध्यम मानते हैं असुर

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की आठवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अर्थात दैवासुरसम्पद्विभागयोग नामक अध्याय पर चर्चा इन किस्तों में हो रही है। इससे पूर्व की किस्त में इस अध्याय के सातवें श्लोक की विवेचना प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य ये नहीं जानते कि उन्हें किन कर्मों में प्रवृत्त होना चाहिए और किन कर्मों से निवृत्त होना चाहिए; क्योंकि उनमें न तो शुचिता, न श्रेष्ठ आचरण और न ही सत्यपालन की भावना होती है। मनुष्य को प्रवृत्त उस कर्म में होना चाहिए, जिसके आचरण या अनुशीलन से स्वयं के परिमार्जन की अथवा सृष्टि के कल्याण की संभावना बलवती होती हो। इसके विपरीत जिस कार्य के आचरण से स्वयं का तथा सृष्टि का अकल्याण होता हो, वह कर्म निवृत्तियोग्य होता है। इसी के साथ ही भगवान श्रीकृष्ण इस श्लोक में यह भी कहते हैं कि आसुरी स्वभाव वाले व्यक्ति ऐसा कर पाने में इसलिए असमर्थ होते हैं; क्योंकि उनमें शुचिता अर्थात बाह्य एवं आंतरिक शुद्धि, श्रेष्ठ आचरण तथा सत्यपालन करने का भाव नहीं होता है।

आसुरी स्वभाव वाले व्यक्ति उन कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, जिन्हें करने से उनको सुख मिलता दिखता है एवं जिन कर्मों को करने से उनको स्वयं का स्वार्थ सधता नहीं दीखता—उन कर्मों से उनकी निवृत्ति होती है अर्थात ऐसे कर्मों को करने से वे दूर रहते हैं। स्वाभाविक है कि जिनके लिए मात्र अपना स्वार्थ, अपना अहंकार एवं अपना ऐशोआराम मुख्य हो जाते हैं, उनके लिए फिर धर्म, न्याय, नीति, सदाचार, परोपकार जैसी बातें गौण हो जाती हैं। श्रीभगवान आगे कहते हैं कि चूँकि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति यानी क्या करना है और क्या नहीं करना, इन दोनों को ही नहीं जानते, इसलिए उनमें न तो बाह्य व आंतरिक शुद्धि होती है, न ही वे ऐसा आचरण कर पाते हैं, जिसे श्रेष्ठ या पवित्र कहा जा सके और साथ ही वे निष्कपट, हितकर, सत्यभाषण एवं सत्यपालन से भी पूर्णरूपेण विमुख होते हैं। ये लक्षण श्रीभगवान आसुरी वृत्ति वाले मनुष्यों के स्वभाव को ध्यान में रखकर गिनाते हैं।]

इसके आगे श्रीभगवान कहते हैं—

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥ 8॥

शब्दविग्रह—असत्यम्, अप्रतिष्ठम्, ते, जगत्, आहुः, अनीश्वरम्, अपरस्परसम्भूतम्, किम्, अन्यत्, कामहैतुकम्।

शब्दार्थ—वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य (**ते**), कहा करते हैं (कि) (**आहुः**), जगत् (**जगत्**), आश्रयरहित (**अप्रतिष्ठम्**), सर्वथा असत्य (और) (**असत्यम्**), बिना ईश्वर के (**अनीश्वरम्**), अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न है(अतएव) (**अपरस्परसम्भूतम्**), केवल काम ही इसका कारण है (**कामहैतुकम्** (**एव**)), इसके सिवा (और) (**अन्यत्**), क्या है (**किम्**)।

अर्थात आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्य कहते हैं कि यह जगत् आश्रयरहित, सर्वथा असत्य, बिना ईश्वर के, अपने आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न है, अतः केवल काम ही इसका कारण है। इसके अतिरिक्त इस संसार के होने का अन्य क्या कारण हो सकता है? आसुरी वृत्ति वाले मनुष्यों के लक्षणों की परिभाषा देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐसे स्वभाव वाले व्यक्ति प्रवृत्ति-निवृत्ति का भेद तो नहीं ही जानते-साथ ही वे ये भी कहते हैं व ऐसा भी

मानते हैं कि इस चराचर जगत् का अर्थात संसार का न तो धर्म-अधर्म के रूप में किसी तरह का आधार या आश्रय है और जब कोई आश्रय नहीं है तो ईश्वर का अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाता है तथा इस जगत् का कोई रचयिता, शासक एवं नियामक भी नहीं है।

उनके अनुसार यह जगत् बिना किसी ईश्वर के मात्र स्त्री-पुरुष के परस्पर कामवश संयोग के कारण उत्पन्न हुआ है, अतः काम ही इसके अस्तित्व का एकमात्र कारण है—इसके सिवाय इसका अन्य कोई प्रयोजन नहीं है।

इन बातों को कहने के पीछे का अभिप्राय स्पष्ट है कि ऐसे स्वभाव वाले व्यक्ति मात्र इतना मानते हैं कि इस जगत् का उद्देश्य केवल यह है कि यहाँ पर मनमाफिक भोग, भोग लिए जाएँ। जब उनका विश्वास ईश्वर में, कर्म विधान में, किसी जीवन उद्देश्य में नहीं है तो फिर जो यहाँ क्षणिक सुख मिलता है—उसी को भोगने में जीवन को गँवा देना उचित है।

इसीलिए चार्वाक दर्शन में वचन आया कि—

यावत् जीवेत सुखं जीवेत्,
ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य,
पुनरागमनम् कुतः॥

अर्थात "जब इस जीव का कोई आवागमन नहीं है, उसको जन्म परमात्मा से नहीं मिला, उसे मरने के बाद अपने कर्मों का परिणाम प्राप्त करने के लिए कहीं जाना नहीं, तो फिर जब तक जिओ सुखों को भोगने के लिए ही जिओ।"

ऐसे जीने की चाहत रखने वाला यदि उधार लेकर भी घी पीना चाहे तो चिंता की बात नहीं; क्योंकि मरने के बाद किसी को कोई हिसाब देना नहीं है। जब कोई हिसाब लेने-देने वाला नहीं है तो फिर कर्मों को करने के साथ दायित्व के बोध की बात भी निरर्थक हो जाती है। इसीलिए ऐसी सोच वाले व्यक्ति, चूँकि उनका विश्वास दायित्व बोध या कर्त्तव्य कर्म में नहीं है, इसलिए उनको चोरी, अपराध, हिंसा, व्यभिचार को करने में कोई बुराई नजर नहीं आती।

वे ऐसा सोचते हैं कि यदि ये कुकर्म करके भी सुख मिलता हो तो उन कुकर्मों को निस्संकोच कर लेना चाहिए; क्योंकि जीवन निरर्थक है, उसका कोई परम उद्देश्य नहीं है। ऐसा चिंतन आसुरी स्वभाव वाले व्यक्ति का होता है।

यहाँ तक तो बात ठीक है कि व्यक्ति ऐसा सोच रहा है, पर यदि देखें कि व्यक्ति की ऐसी सोच का परिणाम क्या निकलता है तो परिणाम स्पष्ट है कि संसार के समस्त भोगों को पागल की तरह भोग लेने का भाव रखने वाले व्यक्ति का जीवन भी पागलपन में, अस्त-व्यस्तता में, अराजकता में बदल जाता है। दैवी संपदा से युक्त व्यक्ति का जीवन एक दिशा, एक लक्ष्य, एक उद्देश्य के लिए समर्पित होता है।

इसलिए उसके जीवन में एक संतुलन, एक संगीत, एक सार्थकता देखने को मिलती है। इसके विपरीत जगत् के अस्तित्व को निरर्थक समझने वाले, आसुरी संपदा वाले व्यक्तित्व का जीवन लगभग विक्षिप्त के समान हो जाता है। उनके जीवन में न कोई दिशा है, न कोई गंतव्य है। वासना का एक झोंका आता है और वे उसको पूर्ण करने निकल पड़ते हैं। अभी उस दौड़ से मुक्ति मिली नहीं कि वे एक दूसरी दौड़ में लग जाते हैं। जीवन उनके लिए एक भाग-दौड़, एक कभी न पूर्ण हो पाने वाली प्यास में बदल जाता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी स्वभाव वाला व्यक्ति यह मानता है कि इस जगत् के पीछे किसी ईश्वर का अस्तित्व नहीं, बल्कि यह तो स्त्री-पुरुष के काम-संयोग से उत्पन्न हुआ है। जो व्यक्ति यह सोच रखता हो, उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य या उद्देश्य कामनाओं का भोग करना रह जाता है। फिर ऐसा व्यक्ति पेट भरने तथा प्रजनन करने के अतिरिक्त जीवन का कोई अन्य लक्ष्य नहीं सोच पाता।

परमपूज्य गुरुदेव ने ऐसे ही व्यक्तियों को नर-पशु, नर-पामर कहकर पुकारा कि जिनका शरीर तथा आकृति तो मनुष्यों के समान होती है, परंतु उनके चिंतन पर मात्र पाशविक वृत्तियों का आधिपत्य होता है। वे कामभोग के अतिरिक्त जीवन के किसी अन्य आध्यात्मिक या सार्थक लक्ष्य की कल्पना भी नहीं कर पाते। दैवी संपदा वाले व्यक्ति का जीवन एक अर्थ, एक प्रयोजन के लिए समर्पित होता है और इसीलिए उसके जीवन में आनंद की कभी कमी नहीं होती, परंतु आसुरी व्यक्ति का जीवन क्षणभंगुर भोगों को भोगने में ही चला जाता है और इसीलिए उसके जीवन में अराजकता तथा विक्षिप्तता की कभी कमी नहीं होती। (क्रमशः)

स्व-मूल्यांकन और आत्मसुधार

स्व-मूल्यांकन आत्मसुधार का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण एवं एक आवश्यक चरण है, जिसकी प्राय: उपेक्षा होती रहती है और इसीलिए जीवन दु:खमय बना रहता है। स्व-मूल्यांकन अपने विचार, भाव एवं व्यवहार का अवलोकन है, जिससे कि व्यक्ति अपने मानसिक विषाद, संताप एवं दु:ख-द्वंद्वों के कारण स्वयं के भीतर खोज सके। अच्छे और लाभदायक तथा बुरे और हानिकारक विचारों के बीच अंतर कर सके। वस्तुत: स्व-मूल्यांकन अपने विचारों पर विचार व चिंतन-मनन करने की कला है।

शरीर में जैसे कोई रोग, दरद या कष्ट हो सकते हैं, वैसे ही मन में ईर्ष्या-द्वेष, क्रोध, तनाव, अवसाद और भय-विषाद जैसे मनोविकार घर कर जाते हैं। शरीर के रोगों की जाँच तमाम तरह के रक्त निरीक्षणों, एक्स-रे या सीटी-स्कैन जैसे यंत्रों के माध्यम से की जाती है व उनके अनुसार रोगों का पता किया जाता है। चिकित्सक का प्रयास पहले समस्या की पहचान करना और फिर उसका उपचार करना होता है।

रोग के कारण की खोज या निदान उपचार का पहला हिस्सा होता है, जो यदि सही ढंग से संपन्न हो गया, तो समझो रोग आधा या अधिकांशत: ठीक हो गया। बिना सही निदान के रोग के उपचार की आशा नहीं की जा सकती। ऐसे में रोगी दर-दर भटकता रहता है और उसका शरीर चिकित्सकों के प्रयोगों की प्रयोगशाला बन जाता है।

इसी तरह से मन के विकारों एवं रोगों के उपचार के लिए इनका सही निदान करना आवश्यक हो जाता है, जिसको स्व-मूल्यांकन या आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया से संपन्न किया जाता है। शारीरिक और मानसिक निदान में अंतर इतना भर होता है कि एक में हम चिकित्सक, अस्पताल, दवा आदि के सहारे ठीक हो जाते हैं, लेकिन मानसिक समस्याओं में बाहरी अवलंबन अधिक कारगर नहीं रहते। मनोवैज्ञानिक या मनोचिकित्सक से हमें परामर्श मिल सकता है, लेकिन व्यक्ति ठीक अपने प्रयास से ही होता है और मनोरोग से बाहर उबरता है। व्यक्ति को स्वयं ही अपना चिकित्सक बनना पड़ता है और स्व-मूल्यांकन या आत्मनिरीक्षण का भरपूर उपयोग करना पड़ता है।

स्व-मूल्यांकन या आत्मनिरीक्षण न केवल रोग के निदान की प्रक्रिया है, बल्कि यह रोग को पनपने से भी रोकती है। जब व्यक्ति नियमित रूप से स्व-मूल्यांकन या आत्मनिरीक्षण करता है तो वह मानसिक रूप से इतना सशक्त हो जाता है कि विकार आसानी से पास नहीं फटक पाते और आने से पहले ही उनको दूर भगा दिया जाता है, लेकिन स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया धीरे-धीरे उसके जीवन का अंग बनती है।

स्व-मूल्यांकन का प्रारंभिक अभ्यास 10-15 मिनट तक अपने विचारों को देखने के साथ हम कर सकते हैं। मन में जो विचार उठें, उन्हें बिना किसी आलोचना, डाँट-डपट या दमन के वैसे ही स्वीकार करते जाएँ। उन्हें बिना किसी परिवर्तन के देखते जाएँ। जब एक बार मन की वृत्तियों, रुझानों आदि का अभ्यास के माध्यम से पता चल जाता है तो फिर इनका नियोजन किया जा सकता है। आत्मनिरीक्षण से वह शक्ति आती है कि व्यक्ति चुनौतियों का सामना दृढ़ता से कर सके।

सामान्यतया कोई दु:ख, त्रासदी या विपदा आने पर, यदि व्यक्ति में सूझ व दम-खम है तो वह और मजबूत होकर बाहर निकलता है और यदि वह नासमझ या दुर्बल है तो वह टूट जाता है और फिर शराब या नशे का शिकार हो जाता है तथा स्वयं में और उलझ जाता है। यह प्राय: तब होता है, जब व्यक्ति दु:ख के कारण को, इसके स्रोत को नहीं पहचान पाता और परिस्थितियों के बहाव में बह जाता है।

बिना स्व-मूल्यांकन की स्थिति में व्यक्ति में आग्रह रहता है कि दुनिया उसके हिसाब से चले और ऐसा न होने पर फिर वह विचलित हो जाता है तथा मन में द्वेष-दुर्भाव एवं दुराग्रह की ग्रंथियाँ पाल बैठता है, लेकिन नियमित स्व-मूल्यांकन या आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया व्यक्ति को इस मन:स्थिति से बाहर निकालती है। उसे समझ आता है कि

हर व्यक्ति का अपना संसार होता है, अपनी मौलिकता होती है, जिसका वह सम्मान करता है।

इस तरह आत्मनिरीक्षण के साथ व्यक्ति बिना दुराग्रह के चश्मे के संसार को देखना सीख जाता है। दूसरों की गलती को बढ़ा-चढ़ाकर देखने के बजाय वह अपनी कमी खोजता है। ऐसे में संसार व्यक्ति को अधिक प्रभावित नहीं कर पाता, जब तक कि वह स्वयं इसकी अनुमति नहीं देता। इस तरह दु:ख के कारण की खोज तथा इसके संभावित समाधान की क्षमता, स्व-निरीक्षण से ही प्राप्त होती है।

प्राय: मन, निम्न स्व के माध्यम के रूप में काम करता है, बाहरी संसार में रमकर निम्न वृत्तियों में उलझ जाता है और अपने शत्रु की भाँति व्यवहार करता है। अनियंत्रित मन व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु सिद्ध होता है। इस अवस्था में मन कई ढंग से व्यक्ति को धोखा देता है। एक औसत व्यक्ति गप्पबाजी, प्रपंच, राग-द्वेष, निंदा-चुगली या लापरवाही में ही समय बरबाद कर रहा होता है और जब जीवन की अग्नि-परीक्षाओं के विषम पल आते हैं, तो प्राय: व्यक्ति स्वयं को उनका सामना करने की स्थिति में नहीं पाता। नित्य स्व-मूल्यांकन व्यक्ति को ऐसी त्रासदी से बचाता है।

जब व्यक्ति स्व-मूल्यांकन करते-करते अपनी बुरी आदतों की हानियों तथा अच्छी आदतों के लाभ से आश्वस्त हो जाता है तो उसमें सार्थक परिवर्तन शुरू हो जाता है। आत्मसुधार तीन चरणों में होता है। पहले विचार पक्का होता है, फिर संकल्प जगता है और फिर सुधार की क्रिया प्रारंभ होती है। प्रेरक शक्ति, हमारी इच्छा और पूर्व अनुभव ही होते हैं। किसी दार्शनिक ने ठीक ही कहा है कि पाप करने की इच्छा पाप नहीं है, बल्कि इसकी सहमति पाप है। स्व-निरीक्षण का अभ्यास हमारे विवेक, समझ को रवाँ रखता है, फिर हम सदैव सजग रहते हैं और पाप-पंक में धँसने से बचते हैं।

डायरी लेखन को इसका व्यावहारिक माध्यम बना सकते हैं, इसमें दो खाने बनाएँ, एक में समय का सदुपयोग, दूसरे में समय के दुरुपयोग का लेखा-जोखा रखें। धीरे-धीरे स्पष्ट होगा कि कहाँ समय बरबाद हो रहा है और इसके साथ इनसे बचने का मार्ग भी तय होगा। तब हम नियमित रूप से आत्मनिरीक्षण के साथ बुराइयों को जड़ से पकड़ पाएँगे, उखाड़ पाएँगे, तथा सद्गुणों का अभ्यास सधेगा। इसके साथ चित्त में प्रसन्नता एवं संतोष की लहरें पूरे जीवन को सार्थकता के बोध के साथ आप्लावित करेंगी। ❑

देवर्षि नारद और ऋषि अंगिरा जा रहे थे। राह में उनकी दृष्टि एक मिठाई की दुकान पर पड़ी। दुकान के समीप ही जूठी पत्तलों का ढेर लगा था। उन्हें खाने के लिए जैसे ही एक कुत्ता समीप आता, वैसे ही दुकान का मालिक उसको जोर से डंडा मारता। डंडा खाकर कुत्ता चीखता हुआ वहाँ से चला जाता। यह दृश्य देखकर देवर्षि को हँसी आ गई। ऋषि अंगिरा ने उनसे उनकी हँसी का कारण पूछा।

नारद बोले—"ऋषिवर! यह दुकान पूर्व में एक कृपण व्यक्ति की थी। उसने बहुत सारे धन का उपार्जन किया, पर दूसरों को उतना ही कष्ट भी दिया। इस जन्म में वह कुत्ता बनकर पैदा हुआ है और दुकान-मालिक उसका ही पुत्र है, जिसके लिए उसने सारा धन संग्रह किया। आज उसके हाथ से उसे जूठा भोजन भी नहीं मिल पा रहा। कर्मफल के इसी खेल को देखकर मुझे हँसी आ गई।" मनुष्य अपने शुभ एवं अशुभ कर्मों का फल अवश्य पाता है, चाहे इसके लिए जन्म-जन्मांतरों की यात्रा क्यों न करनी पड़े।

मिर्जा गालिब की नजर में बनारस

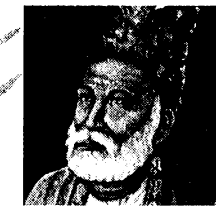

बनारस या वाराणसी, दुनिया में सबसे प्राचीन नगर होने के साथ ही धर्म, संस्कृति, ज्ञान, साहित्य, दर्शन, संगीत आदि का विख्यात केंद्र रहा है। यह बाबा विश्वनाथ की नगरी है और तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। देश के अनेक बड़े साहित्यकारों, कलाकारों, आचार्यों, भक्तों ने बनारस में रहकर अपने जीवन को सार्थक किया है। उर्दू-फारसी के महान शायर मिर्जा गालिब(1797-1869) भी कुछ महीने बनारस में रहे। यहाँ के प्राकृतिक एवं मानवीय सौंदर्य, अध्यात्म एवं भक्ति की जो आनंदानुभूति उन्होंने की, उसे उन्होंने 108 शेरों की अपनी मसनवी 'चिराग-ए-दैर' अर्थात 'मंदिर का दीपक' के रूप में अभिव्यक्त किया है।

बनारस में गालिब का आना यों ही नहीं हुआ था। हुआ यह कि जब अँगरेजों ने गालिब की पेंशन बंद कर दी तो वे आर्थिक रूप से कर्जदार होने लगे। अपनी पेंशन पुनः प्राप्त करने के लिए कलकत्ता (कोलकाता) जाते हुए लखनऊ, बांदा, इलाहाबाद होते हुए वे बनारस पहुँचे। बनारस में उनका कोई परिचित नहीं था। वे कुछ दिन नवरंगाबाद की एक सराय में रहे, फिर उसी के पास एक वृद्धा के मामूली मकान में किराये पर रहने लगे। गालिब रास्ते में काफी बीमारी झेलते हुए बनारस पहुँचे थे। यहाँ आने पर उनकी तबीयत में सुधार हुआ और वे बनारस के प्राकृतिक दृश्यों तथा सामाजिक-धार्मिक जीवन से बहुत प्रभावित हुए।

गालिब ने बनारस आकर जो महसूस किया, उसकी पहली प्रतिक्रिया अपने दोस्त मौलवी मुहम्मद अली खाँ को लिखे उनके खत में दिखती है। गालिब ने लिखा—'जब मैं बनारस में दाखिल हुआ, उस दिन पूरब की तरफ से जान बख्शने वाली जन्नत की-सी हवा चली, जिसने मेरे बदन को तवानाई अता की और दिल में एक नई रूह फूँक दी। उस हवा के करिश्माई असर ने मेरे जिस्म को फतह के झंडे की तरह बुलंद कर दिया। ठंढी हवा की लहरों ने मेरे बदन की कमजोरी दूर कर दी।' गालिब की बनारस के बारे में यह प्रथमानुभूति थी। बनारस ने उनके बीमार जिस्म में नई रूह प्रविष्ट करा दी थी।

गालिब ने अपने शरीर और आत्मा के नए उल्लास और आनंद के साथ जब बनारस की सड़कों, गलियों और घाटों पर जाकर वहाँ के जीवन को देखा तो उन्होंने उसी खत में उसकी प्रशंसा में लिखा—'अगर मैं इस शहर को दुनिया के दिल का नुक्ता कहूँ तो दुरुस्त है। इसकी आबादी और इसके अतराफ (शानोशौकत) के क्या कहने। अगर हरियाली और फूलों के जोर की वजह से मैं इसे जमीन पर जन्नत कहूँ तो बजा (उत्तम) है। इसकी हवा मुरदों के बदन में रूह फूँक देती है। इस खाक के जर्रे मुसाफिरों के तलवों के काँटे खींच निकालते हैं। अगर दरिया-ए-गंगा इसके कदमों पर अपनी पेशानी न मलता तो वह हमारी नजरों में मोहतरम (पूज्य) न होता और अगर सूरज इसके दरो-दीवार के ऊपर से न गुजरता तो वह इतना रौशन और ताबनाक (प्रकाशवान) न होता।' गालिब ने इस खत में बनारस की दिल खोलकर तारीफ की है।

गालिब ने इस खत में 12 शेर लिखे थे, लेकिन शेर लिखने का यह सिलसिला आगे भी चलता रहा; जो बनारस के संदर्भ में उनके 108 शेरों की मसनवी 'चिराग-ए-दैर' के रूप में प्रकाशित हुआ। यह फारसी में उनकी तीसरी मसनवी थी। प्रोफेसर सादिक का मत है—108 के अंक के शुभ और पवित्र होने के कारण इसमें इतने ही शेर शामिल किए गए; क्योंकि इसमें कुछ शेर ऐसे भी मिलते हैं, जो इस मसनवी में नहीं हैं। इससे छूटे ऐसे ही एक शेर में गालिब बनारस का जर्रा-जर्रा सूरज के समान कहते हैं।

इस मसनवी का अर्थ मंदिर का दीपक है अर्थात बनारसरूपी मंदिर में मसनवीरूपी दीपक की आराधना-पूजा में यह 108 शेरों की माला अर्पित है। गालिब बनारस के धार्मिक, आध्यात्मिक, मानवीय और प्राकृतिक सौंदर्य से इतने प्रभावित थे कि वे बनारस को हिंदुस्तान का ईश्वरीय स्थान मानते थे और इसे आस्थावानों का प्रार्थनास्थल बताते थे। गालिब बनारस की खूबियों का अपने शेरों में बार-बार जिक्र करते थे, यथा—बनारस में चमन की बहार है, स्वर्ग का सौंदर्य है, जीवन-मरण का विश्वास है, यहाँ मृत्यु से

अमरत्व मिलता है, आत्मा को शांति मिलती है, अद्वितीय बहारिस्तान है, सभी मौसमों में जन्नत है आदि। गालिब कयामत न आने की वजह भी इस शहर को बताते थे; क्योंकि उनके अनुसार ईश्वर इस सुंदरतम शहर को नष्ट नहीं करना चाहते हैं। उनके अनुसार बनारस का वैभव और प्रतिष्ठा आदमी की कल्पना से भी बहुत ऊँचे हैं।

गालिब के लिए बनारस का कण-कण, प्रकृति, सौंदर्य, समाज, शिवालय, गंगा आदि सभी पवित्र हैं। गालिब यहाँ के स्वर्ग समान सुंदर परिवेश, जीवन, अध्यात्म एवं सौंदर्य को आत्मसात् करते रहे। गालिब बनारस के इतने मुरीद हो गए कि बनारस आने के लगभग 30-32 वर्ष बाद भी उन्होंने मिर्जा सय्याह को लिखा—बनारस का क्या कहना। ऐसा शहर कहाँ पैदा होता है? इंतहा-ए-जवानी में मेरा वहाँ जाना हुआ। अगर इस मौसम में जवान होता तो वहीं रह जाता, इधर को न आता। गालिब की मसनवी 'चिराग-ए-दैर' सच ही मंदिर का दीपक है। गालिब के इस आत्मबोध ने उन्हें भारत के धर्म, संस्कृति, अध्यात्म और सौंदर्य चेतना का अंग बना दिया। गालिब बनारसमय हो गए। समाज ने भी गालिब के इस अविस्मरणीय कृतित्व के लिए उन्हें पूरा आदर-सम्मान दिया। वीनू राजपूत ने 'चिराग-ए-दैर' पर फिल्म बनाई, सादिक ने फारसी से हिंदी में अनुवाद किया और वाराणसी में गालिब की 150वीं पुण्यतिथि पर उन्हें याद किया गया। गालिब इस 'मंदिर का दीपक' से भी याद किए जाते रहेंगे।

गालिब के अनुसार बनारस क्या है—जन्नत और भरा-पूरा स्वर्ग है। वे कहते हैं कि बनारस का अजनबीपन खतम हो गया है, शंखों की आवाजों से खुशी होती है और दिल्ली की याद तक नहीं आती। गालिब इसी खत में लिखते हैं कि उनका मन करता है कि वे बस, यों ही गंगा किनारे जा बैठें और उस समय तक वहाँ बैठे रहें, जब तक कि जिंदगीभर के गुनाहों का गर्द न धुल जाए और वे पानी के एक कतरे की तरह दरिया में न मिल जाएँ। गालिब की यह आत्मस्वीकृति बनारस की महिमा एवं महत्ता के साथ गालिब के मन में यहाँ की श्रेष्ठता और आत्मा के ईश्वर में लीन होने के प्रति आस्था को भी प्रकट करती है। गालिब ने बनारस में स्वयं अपने आप को पाया था। बनारस की आध्यात्मिक ऊर्जा से वे बहुत ऊर्जान्वित हुए थे। ❑

राजा देवकीर्ति युद्धकला में अत्यंत निपुण थे। अनेक महारथियों को उन्होंने पराजित किया था। दूसरों को हराने का, नीचा दिखाने का अभिमान सबसे बुरा होता है। इसी अभिमान में एक दिन वे अपने गुरु से मिलने पहुँचे और दंभपूर्ण स्वर में बोले—"गुरुदेव! मेरा स्वागत करें, आज मैं सब योद्धाओं को हराकर, आपका नाम ऊँचा कर यहाँ लौटा हूँ।"

उनके इस व्यवहार पर उनके गुरु हँसे और बोले—"देवकीर्ति तूने सब को पराजित किया, पर क्या स्वयं को पराजित कर पाया?" देवकीर्ति को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले—"गुरुदेव! क्या अपने को भी कोई पराजित कर सकता है?" गुरुदेव बोले—"बेटा! असली युद्ध तो अपने विरुद्ध ही लड़ा जाता है। जो अपने अहंकार को पराजित कर लेता है, उसका पराक्रम ही सबसे बड़ा है। अपनी दुष्प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर लेना ही साधना है और अपने व्यक्तित्व का परिष्कार कर लेना ही सिद्धि है।" यही सत्य हम सबके जीवन पर लागू होता है।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी –3

व्यक्तित्व का परिष्कार

(समापन किस्त)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने इस महत्त्वपूर्ण उद्‌बोधन में इस शाश्वत सत्य की ओर इशारा करते हैं कि मनुष्य की आंतरिक उन्नति वस्तुतः उसके व्यक्तित्व के परिशोधन पर निर्भर करती है। वे कहते हैं कि व्यक्तित्व का परिष्कार करने के लिए दो साधनात्मक पथ सदा से निर्धारित रहे हैं। पहले का नाम तप और दूसरे का नाम योग है। तप की अद्वितीय परिभाषा परमपूज्य गुरुदेव कहते हैं कि तप का तात्पर्य पुरानी आदतों के रूपांतरण से है और ऐसा करने में साधक को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनको सहर्ष स्वीकारने का नाम तितिक्षा है। जब साधक का व्यक्तित्व तप की ऊर्जा से अनुप्राणित हो जाता है, तब वह परमसत्ता से मिलन के योग्य बन जाता है और इस मिलन का नाम योग है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

नहीं है संभव ब्रह्म का वर्णन

मित्रो! जैसे अपनी पृथ्वी के ऊपर जो पानी है, वह किससे बना है? हमारे यहाँ पानी दो गैसों से मिलकर बनता है—ऑक्सीजन और हाइड्रोजन। इन दो गैसों को जब भी हम मिला देते हैं, तो पानी बन जाता है। यह केमिस्ट्री हमारे यहाँ है और मंगल ग्रह के ऊपर है कि वहाँ अमोनिया पानी के रूप में बदल जाता है। अमोनिया क्या होता है? अमोनिया, बेटे! नौसादर को कहते हैं। जरा-सा नौसादार नाक में लगा दो, छींक आ जाती है। सारे मंगल ग्रह में नौसादर ही है? हाँ बेटे! अमोनिया में कुल्ला करते हैं, अमोनिया में नहाते हैं। तो महाराज जी! अमोनिया में नहानेवाला जिंदा रहता है कि मरता है, जिंदा रहता है।

यह कैसी फिजिक्स है, कैसी केमिस्ट्री है? बेटे! मैं फिजिक्स की क्या बताऊँ? यह फिजिक्स वहाँ काम करती है और यहाँ एटम काम करता है। अगर आप यहाँ से पृथ्वी के एटमों को काटते हुए चले जाएँ तो फिर ये एटम जर्रे जो हमारी जमीन पर पड़े हैं, वहाँ इस तरीके से पाएँगे, जैसे आग की ज्वाला है। आग की नीले रंग की ज्वालाएँ दौड़ती चली जा रही हैं। यह मेटल जा रहा है। मेटल तो परमाणु वे रूप में होता है। अरे! परमाणु के रूप में नहीं होता। य गैस फॉर्म में है। गैस फॉर्म में जो मेटल है, नीले रंग क आग, हरे रंग की आग, पीले रंग की आग के रूप में गुब्बारे के रूप में ऐसे ही दिखाई पड़ेगी। जमीन से आ पाँचवें-छठवें एटमॉसफियर पर चले जाइए, वहाँ ऐसी आग की लपटें दौड़ती हुई दिखाई पड़ेंगी। यह आग ठंढी होती है या गरम होती है? ठंढ-गरम कुछ नहीं, बस, आग होती है और ऐसे ही भागती फिरती है।

मित्रो! यह क्या वबाल है? वहाँ की फिजिक्स अलग है और पृथ्वी की फिजिक्स अलग है। आप तो भगवान क बात बताइए? कैसे बताऊँ भगवान की बातें, ब्रह्म की बातें ऋषियों ने सही कहा है कि इसका वर्णन हम नहीं क सकते। हम बता नहीं सकते हैं और हमें कोई जानकारी नह है। उसकी विराटता, व्यापकता इतनी ज्यादा है कि आदम की अक्ल उसके सामने राई के बराबर है। नहीं साहब लंबाई बता दीजिए। लंबाई बताने लगूँ, तो पागल हो जाओगे कैसे? एक सेकेण्ड में एक लाख छियासी हजार मील यान

कि तीन लाख किलोमीटर प्रकाश भागता है। अब हिसाब लगा लीजिए। यह सेकेण्ड की बात बता रहा हूँ। फिर एक महीने में कितना दौड़ेगा? पता कर लीजिए। अरे महाराज जी! इसमें तो बहुत बिंदियाँ हो जाएँगी। हाँ बेटे! फिर भगवान की, ब्रह्म की नाप-जोख कैसे हो सकती है? संभव नहीं है।

हर इनसान में ईश्वर

मित्रो! अब एक और सूत्र सामने आता है; जिसका नाम है—परमात्मा। परमात्मा क्या होता है? आत्मा वह है, जो सामान्य मनुष्यों के भीतर एक जीवन के रूप में काम करती है और परमात्मा कहते हैं—सुपरसत्ता को, जिसको उस दिन मैं आप से सद्गुरु कह रहा था। वह कैसा है? वह हमारे लिए बनाया गया है और हमारे अंतःकरण में निवास करता है। एक ईश्वर वह है, जो हमारे व्यक्तिगत जीवन में काम करता है और वही हमको फल देता है। वही हमसे नाराज होता है, वही हमको आशीर्वाद देता है।

वह किसका है? वह बेटे! हमारा ईश्वर है, जिसको हम पैदा करते हैं। जिसको हम बढ़ाते हैं, जिसको हम मजबूत करते हैं। जिसको हम चाहें तो गिरा भी सकते हैं और खतम भी कर सकते हैं। वह ईश्वर हमारा है? हाँ बेटे, हर आदमी एक अलग ईश्वर है। मसलन, मीरा का एक अलग ईश्वर था। उसने अपने ईश्वर को पाल-पोसकर बड़ा किया।

वह कैसा था? एक पत्थर का टुकड़ा था, जिसे किसी ने उसके हवाले कर दिया था, मीरा के हवाले कर दिया था। उसे मीरा ने पाल-पोस करके, दूध पिला करके, तेल मालिश करके ऐसा मजबूत बना दिया कि वह पत्थर भगवान बन करके मीरा के साथ नाचने लगा और राणा ने जब जहर का प्याला भेजा, तो उसका जहर पी लिया। गिरिधर गोपाल बहुत ताकतवर था। फिर उसका क्या हुआ?

मित्रो! गिरिधर गोपाल से क्या मतलब है आपका? गिरिधर गोपाल से आपका मतलब अगर पत्थर से था, तो वह पत्थर राजस्थान के मेड़ता में अभी भी ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रखा हुआ है। पत्थर में चमत्कार है? नहीं बेटे! पत्थर में कोई चमत्कार नहीं है। फिर मीरा का गिरिधर गोपाल क्या था? मीरा ने अपनी श्रद्धा के हिसाब से, अपनी भावना के हिसाब से पत्थर के भीतर भगवान को आरोपित किया था। उसकी श्रद्धा की खुराक खा-खा करके गिरिधर गोपाल मोटा और मजबूत होकर मीरा के साथ चलता रहा। यह मीरा का व्यक्तिगत गोपाल था। परमात्मा हम इसी को कहते हैं। फिर मीरा के बाद गिरिधर गोपाल का क्या हुआ? मीरा के बाद में गिरिधर गोपाल मर गया।

अरे! राम-राम, यह क्या कह रहे हैं—आप भगवान के बारे में? सच कहता हूँ। उसने कहा कि हमारी मीरा मरेगी, तो हमको भी मरना चाहिए। आपने पतिव्रता स्त्रियों के बारे में सुना है। पतिव्रताएँ अपने मर्दों के साथ में मर जाती हैं, जल जाती हैं और वह जो गिरिधर गोपाल था, मीरा के साथ में जल गया। क्यों? क्योंकि मीरा ने उस गिरिधर गोपाल को पैदा किया था। यह उनका कौन था? भगवान था, स्वामी था, सेवक था, सच-सच बता दीजिए? यह था मीरा का बेटा। उसने अपनी श्रद्धा के आधार पर उसे पैदा किया था। पत्थर के टुकड़े में मीरा ने एक परमात्मा को पैदा किया। जैसे औलाद पैदा करते हैं, ऐसे ही आध्यात्मिक औलादें भी पैदा की जाती हैं।

मित्रो! रामकृष्ण परमहंस की देवी काली कितनी जबरदस्त थी। विवेकानंद जब नौकरी माँगने के लिए गए, तो रामकृष्ण परमहंस ने कहा—जा, देवी के पास नौकरी माँग करके ला। विवेकानंद ने देवी को देखा, जो जमीन से लेकर आकाश तक फैली थी। आग के तरीके से जलती काली को उन्होंने देखा। उन्होंने कहा—"माँ! मैं नौकरी माँगने नहीं आया।" क्या माँगने आया? माँ मैं शक्ति माँगने आया, भक्ति माँगने आया, शांति माँगने आया। देवी खिल-खिलाकर हँसी और उसको आशीर्वाद देकर के चली गई।

कौन-सी देवी थी? रामकृष्ण परमहंस की देवी, जिसको रानी रासमणि ने देखा था कि परमहंस जो भोग खाते थे, देवी भी साथ-साथ खाती थी। देवी थी? हाँ बेटे! देवी थी। दक्षिणेश्वर के मंदिर में अभी भी वह देवी विद्यमान है। तो क्या अब भी देवी में चमत्कार है? हम जाएँ तो विवेकानंद के तरीके से देवी हमें भी दिखाई दे सकती हैं? हमको भी आशीर्वाद दे सकती हैं? नहीं बेटे! आपको कोई आशीर्वाद नहीं दे सकती। क्यों? क्योंकि वह जो देवी थी, जो रामकृष्ण परमहंस ने पैदा की थी, वह रामकृष्ण परमहंस के साथ-साथ पैदा हुई, रामकृष्ण परमहंस के साथ जीवित रही और रामकृष्ण परमहंस के साथ में सती हो गई।

भक्त की भक्ति से जन्मे भगवान

महाराज जी! आप तो कह रहे थे कि गिरिधर गोपाल मीरा के साथ में सती हो गए, सता हो गए। अब आप कहते हैं कि देवी जो थी, वह सती हो गई। हाँ बेटे! दोनों ही बातें हो सकती हैं। वह भक्त, जो भगवान को पैदा करता है और पैदा करने के बाद में जब तक उस भक्त की भक्ति जिंदा रहती है, तब तक भगवान जिंदा रहता है। यह कौन-सा भगवान है? बेटे! मैं इसी के बारे में कह रहा था। परमात्मा इसी का नाम है और हमारे व्यक्तिगत जीवन में कोई लाभ-हानि देगा, तो यही परमात्मा देगा, जिसको हमने पैदा किया। हम किस तरीके से पैदा करते हैं?

मानवीय सिद्धांत और आदर्श, जो हमारे भीतर भगवान के रूप में काम करते हैं। भगवान किस रूप में काम करता है? आदर्शों के रूप में। सुप्रीम सत्ता हमारे भीतर किस तरह से काम करती है? आदर्शों के रूप में, आस्थाओं के रूप में, श्रद्धाओं के रूप में हमारे भीतर काम करती है।

आपके भीतर कितना भगवान है? हम मीटर लगाकर के आपको अभी बता सकते हैं। लाइए थर्मामीटर। थर्मामीटर से क्या बुखार देख रहे हैं? हाँ बेटे! मैं बुखार देख रहा था कि कितना टेम्प्रेचर आ गया? 99.5 सेण्टीग्रेट आ गया। तो क्या आप बता सकते हैं कि कितना मीटर है भगवान? इसके लिए आप क्या करेंगे?

आपके दिमाग और आपके अंत:करण में एक सलाई डालेंगे और तीन तरीके से आपकी परीक्षा करेंगे और देखेंगे कि आपके शरीर में सत्कर्मों की प्रेरणा के रूप में, कितनी मात्रा में गरमी है। यह क्या कह रहे हैं? बेटे! हकीम जी नब्ज देखते हैं। नब्ज में क्या देखते हैं? यह देखते हैं कि दिल में धड़कन कितनी है। धड़कन के अलावा टेम्प्रेचर कितना है। इसके लिए थर्मामीटर लगाते हैं। अच्छा, और क्या देखते हैं? बेटे! जीभ देखते हैं, आँखें देखते हैं। ऐसे ही हम आपको देखकर के बता सकते हैं कि आपके भीतर कितना भगवान है।

मित्रो! आपके भीतर अगर भगवान है, तो आपकी क्रियाओं के रूप में, कर्म के रूप में, सत्कर्मों के रूप में भगवान को दृष्टिगोचर होना चाहिए और आपके विचारों में सद्ज्ञान के रूप में भगवान दृष्टिगोचर होना चाहिए और आपके अंत:करण में सद्भावना के रूप में भगवान दृष्टिगोचर होना चाहिए। नहीं साहब! हमारे भीतर तो इन चीजों में से कोई भी चीज नहीं है।

आपके अंदर सत्कर्म है? नहीं गुरुजी! हम तो सबेरे से उठते हैं और सिवाय बदमाशी, बेईमानी के दूसरा काम नहीं करते और आपके विचार? हमारे विचारों में तो इतना गंदापन, इतना कमीनापन, इतनी जलालत भरी पड़ी है कि अगर आप हमारे विचारों को देखें तो घिन आ जाएगी। हम तो सफेद कपड़ा पहने बैठे हैं, पर विचारों की दृष्टि से हम बड़े कमीने हैं, गंदे हैं और आस्थाओं की दृष्टि से?

आस्थाएँ, श्रद्धा-श्रेष्ठता के ऊपर हमारा विश्वास जगाती हैं। हम चोंगा पहने बैठे हैं। सत्य का बहाना बना देते हैं, रामायण की बात कह देते हैं, पर रामायण के भीतर जिस तत्त्वज्ञान का, जिन श्रद्धाओं का समन्वय है, जिस श्रद्धा को

मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि
गर्वो दुर्वचनं तथा।
हठी चैव विषादी च
परोक्तं नैव मन्यते॥

मूर्ख के पाँच लक्षण हैं, प्रथम—गर्व करना, दूसरा—दुर्वचन बोलना, तीसरा—हठ करना, चौथा—कलह करने वाला होना एवं पाँचवाँ—कहे हुए वचनों का पालन न करना।

भरत जी ने अपने रोम-रोम में रमा लिया, जिस श्रद्धा को केवट ने अपने रोम-रोम में रमा लिया, जिस श्रद्धा को हनुमान ने अपने रोम-रोम में रमा लिया था। जिस श्रद्धा को गिलहरी ने, विभीषण ने, जटायु ने अपने जीवन में रमा लिया था। वह श्रद्धा तो आपके जीवन में छुई भी नहीं।

भगवान का ढकोसला

मित्रो! आपके जीवन में श्रद्धा तो नहीं है, तो मैं यह कह सकता हूँ कि आप में ये तीनों-के-तीनों कलेवर भगवान की तरह से खाली हैं। वे आपके पास नहीं हैं। फिर कौन-सी चीज है आपके पास? आपके पास भगवान का ढकोसला है। ढकोसला कैसे होता है? अरे! आपने ढकोसला ही नहीं देखा। ढकोसला देखेंगे, तो आप अचंभे में रह जाएँगे।

भगवान का ढकोसला देखना हो तो आप जाइए और देखिए, कैसे-कैसे ढकोसले होते हैं? एक दिन भगवान जी शबरी से बात कर रहे थे। शबरी जी! हम बहुत भूखे हैं और हमको आप खाना खिला दीजिए? शबरी ने कहा—"हमारे पास तो बेर हैं। हम आपको बेर खिला सकते हैं।" लाइए बेर ही खिला दीजिए। कोई हमको खाना नहीं खिलाता।

शबरी बेर खिलाती तो जाती थी और यह पूछती जाती थी कि नाथ-द्वारे के मंदिर का क्या हुआ? जहाँ सोने की चक्कियों में केसर पीसी जाती है। पिस्ता और बादाम का हलवा बनता है। उसका क्या हुआ? और वृंदावन में जो छप्पनभोग लगते हैं, उनका क्या हुआ? और दक्षिण भारत के मंदिरों में जो भोग लगता है, उसका क्या हुआ? वे सब आपको नहीं मिले? नहीं, हमको नहीं मिले। तो कौन खा जाता है? वे सब पंडे-पुजारी खा जाते हैं। हम तो दरवाजे पर भिखारी के रूप में, दरिद्रों के रूप में, कोढ़ियों के रूप में, दीनों के रूप में खड़े रहते हैं और कहते हैं कि रोटी का टुकड़ा हमको दे दीजिए, तो पुजारी कहता है कि यहाँ से निकल।

मित्रो! यह भगवान तो मालदारों का है। भगवान पैसा वालों का है, अमीरों का है। भगवान पंडों का है। उसका गरीबों से कोई ताल्लुक नहीं है। इसलिए गरीबों के हिस्से में भगवान नहीं आ सकता। तो शबरी तू ही बता कि हम किस तरीके से रोटी खाएँ और हमको रोटी कौन देगा? ठीक है, आइए, हम आपको रोटी खिलाएँगे। शबरी भगवान को जूठे बेर खिला रही थी।

आप जिसके साथ जुड़े हुए हैं, उसका नाम क्या है? उसका नाम है—ढकोसला। भगवान के नाम के बराबर इतना बड़ा ढकोसला शायद ही कहीं दिखाई पड़ता हो। मित्रो! चारों ओर ढकोसला ही दिखाई पड़ता है। असली भगवान क्या हो सकता है? असली भगवान तो वही हो सकता है। जब वह हमारे भीतर प्रवेश करता है, तब क्या करते हैं? बेटे! जैसे बिजली के दो तारों को जब हम मिला देते हैं, तो उसके अंदर एक चीज उठती है। उसका नाम है—करेंट। करेंट किसे कहते हैं? बेटे! अगर करेंट को देखना चाहते हैं, तो मैं उसे स्पार्क के रूप में दिखा सकता हूँ। करेंट दिखाई तो नहीं पड़ता, लेकिन झटका दे सकता है। जैसे ही दोनों तारों को पास लाते हैं, तो चिनगारियाँ निकलनी शुरू हो जाती हैं।

चिंतन में लाएँ भगवान

मित्रो! जब आत्मा-परमात्मा के साथ छूना शुरू करता है, तो उसमें से स्पार्क शुरू हो जाता है। स्पार्क किसे कहते हैं? स्पार्क कहते हैं—आदर्शों को। आदमी के व्यक्तिगत जीवन में आदर्श, आदर्शों की हूक, आदर्शों की उमंग, आदर्शों की ललक इस कदर छूटती है कि आदमी अपने आप को बेकाबू महसूस करता है। सारे-के-सारे बंधन एक ओर और आदर्शों की हूक एक ओर। आदर्शों की ललक एक ओर। आदर्शों के प्रति निष्ठा एक ओर और आदर्शों के प्रति कठोरता एक ओर। ये सारी-की-सारी चीजें स्पार्क के रूप में चली आती हैं। तो आप भगवान को क्या कहते हैं? चलिए मैं भगवान को आदर्शों और उत्कृष्टताओं का समुच्चय कह सकता हूँ।

चिंतन में जब भगवान आता है, तो हमारे भीतर उत्कृष्टता ले आता है। व्यवहार में जब भगवान हमारे पास

फार्म—4

(1) प्रकाशन स्थान	मथुरा
(2) प्रकाशन अवधि	मासिक
(3) मुद्रक का नाम	मृत्युंजय शर्मा
क्या भारत का नागरिक है	हाँ
पता	जनजागरण प्रेस, वृंदावन मार्ग, मथुरा
(4) प्रकाशक का नाम	मृत्युंजय शर्मा
(5) संपादक का नाम	डॉ० प्रणव पण्ड्या
क्या भारत का नागरिक है	हाँ
पता	शांतिकुंज, हरिद्वार
(6) उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो समाचारपत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	मृत्युंजय शर्मा अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा (उ.प्र.)

मैं मृत्युंजय शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं। *—मृत्युंजय शर्मा*

आता है, तो आदर्श कर्तृत्व के रूप में दिखाई पड़ता है। आँख से दिखाई पड़ता है ? नहीं बेटे, आँख से नहीं दिखाई पड़ता। आँख से किसी ने नहीं देखा है। नहीं, हम तो आँख से भगवान के दर्शन करना चाहते हैं। तो चले जाइए बदरीनाथ। आँख से भगवान नहीं दिखता। आँख तो मिट्टी की, पत्थर की बनी है और यह केवल मिट्टी और पत्थर को ही दिखा सकती है। हमारा जो यह चेतन है, चेतन को दिखा सकता है। चेतन जड़ के द्वारा नहीं देखा जा सकता। आप हमारे प्राण को देखिए। किससे देखेंगे ? माइक्रोस्कोप से। भगवान को आँखों से नहीं देखा जा सकता। आँख से किसी ने नहीं देखा।

मित्रो! भगवान को आँख से देखने की उम्मीदें करना गलत है। तो भगवान को कैसे देखा जा सकता है ? बेटे! भावनाओं के द्वारा देखा जा सकता है और कोई चीज या तरीका नहीं है। कैसे देखा जा सकता है ? बेटे! हम दोनों को जब मिला देते हैं, तो योग हो जाता है अर्थात जब हम अपने आप को भगवान के साथ मिला देते हैं, आदर्शों के साथ मिला देते हैं, तब हम योगी हो जाते हैं। योग का तात्पर्य है—अपनी विचारणा को आदर्शवादिता के साथ मिला दें और तप का अर्थ है—अपने बहिरंग जीवन को आदर्शवादिता के, सिद्धांतों के साथ में तपा देना और घुला देना।

यह तप और योग है। योग और तप में क्या अंतर है ? योग और तप की हम व्यावहारिक जीवन में व्याख्या करने लगें, तो हम इसे सभ्यता और संस्कृति कह सकते हैं। अब आप सोशियोलॉजी पर—समाज विज्ञान पर आ जाइए, सिविकसेंस पर आ जाइए। तब आप क्या कहेंगे ? चलिए मैं आपको व्यावहारिक भाषा बता सकता हूँ। यह तो कठिन शब्द है, इसलिए कई बार आप जंजाल में फँस जाते हैं। जंजाल में आप न फँसना चाहें, बोल-चाल की भाषा में समझना चाहें, तो मैं ऐसे समझा सकता हूँ।

सभ्यता और संस्कृति

कैसे ? तप का अर्थ है—सभ्यता। सभ्यता का अर्थ है कि हमको समाज के प्रति और दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का किस तरीके से निर्वाह करना चाहिए। सिविकसेंस इसी में आता है। शिष्टाचार इसी में आता है। कानून का पालन इसी में आता है। लॉ एंड आर्डर इसी में आता है। डिसिप्लिन इसी में आता है। ये सारे-के-सारे फायदे इसी में आते हैं। जिसको हम तप कहते हैं।

मित्रो! यह क्या है ? यह सभ्यता है। सभ्यता—जिसमें एक व्यक्ति को चरित्रनिष्ठ और समाजनिष्ठ होना चाहिए। श्रेष्ठ और शालीन होना चाहिए। उत्कृष्ट और भला आदमी होना चाहिए। यह क्या है ? यह बेटे! तप के हिस्से हैं। तप का परिणाम यहाँ होना चाहिए। तप का अभ्यास करने के लिए कई काम करने पड़ते हैं, जैसे कि शरीर की कलाइयाँ मजबूत करने के लिए कई बार अखाड़े में जाना पड़ता है। कई बार दंड पेलने पड़ते हैं। कई बार दंड-बैठक करनी पड़ती है। उसी तरीके से अपने आपको सभ्य बनाने के लिए हमको कई तरह की कसरत करनी पड़ती है।

कसरतें कौन-सी हैं ? वही हैं, जिनको हम तपश्चर्या कहते हैं। जिनका मकसद है—अपने व्यावहारिक जीवन में शालीन जीवन जिएँ। सज्जनता का जीवन जिएँ, शराफत का जीवन जिएँ, अच्छाई का जीवन जिएँ। जिसका अभ्यास करने के लिए जो हमारे कुसंस्कार हैं, उनको निकालने के लिए, मारने के लिए, तोड़ने के लिए जो खास किस्म के व्यायाम कराए जाते हैं, उनको तप कहते हैं। व्यायाम में यह फायदा है कि व्यायाम के जरिए से हमारी कलाइयाँ, हमारी मांसपेशियाँ और हमारा नर्वस सिस्टम मजबूत हो जाता है और तप से क्या फायदा है ? तप अपने आप में कोई महत्त्वपूर्ण चीज नहीं है।

मित्रो! तप उस चीज का नाम है, जो हमारे कुसंस्कारों को दबाने में और सुसंस्कारों को जगाने में, सुसंस्कारों को उभारने में काम आता है। जो हमारे बहिरंग जीवन को स्मार्ट बनाता है। इन सारी-की-सारी प्रक्रियाओं को साधने के लिए साधना करते हैं। साधना साधने को कहते हैं। अपने आप को साध लेने का नाम साधना है। अपने बहिरंग जीवन को साध लेने का नाम तपश्चर्या है, तितिक्षा है। इसको आप दूसरे शब्दों में कहना चाहें, तो सभ्यता कह सकते हैं।

योग किसे कहते हैं ? इसको कहेंगे—संस्कृति। संस्कृति क्या होती है ? संस्कृति कहते हैं—कल्चर को। कल्चर क्या होता है ? कल्चर कहते हैं—हमारी विचारणाएँ, हमारी आस्थाएँ, हमारी मान्यताएँ, हमारी इच्छाएँ और आकांक्षाएँ इस तरह की होती हैं, जिनको हम संस्कृति कहते हैं। संस्कृति हमारी चेतना का विषय है और सभ्यता हमारे शरीर का विषय है। हमारे व्यवहार का विषय है। सभ्यता और संस्कृति दोनों को मिला दें, तो आप यह मान सकते हैं कि योग से क्या मतलब होना चाहिए ? तप से क्या मतलब होना

चाहिए? योग और तप बड़े कठिन शब्द हैं। दो उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, हमको जीवात्मा को संस्कारवान बनाने के लिए, कई तरह की कसरतें करनी पड़ती हैं।

मित्रो! वे कसरतें जो हमको संस्कारवान बनाने का अर्थात हमारी चेतना का स्तर ऊँचा उठाने का जो उद्देश्य है, उसको पूरा करती हैं, उन सबको हम योगाभ्यास कह सकते हैं। हम जो भी कसरत करेंगे, जो भी व्यायाम इस काम को पूरा करेंगे, उनको हम योगाभ्यास कह सकते हैं। वे हमारे बहिरंग जीवन को, हमारे व्यावहारिक जीवन को श्रेष्ठ बनाते हैं। उन सब चीजों को हम तप कह सकते हैं।

तप और योग का उद्देश्य यही है। योग और तप हमारी साधना की दो दिशाएँ हैं। हमारे बहिरंग जीवन को समर्थ बनाने के लिए तप और हमारे अंतरंग जीवन को समर्थ बनाने के लिए योग है। योग की भी कुछ क्रियाएँ हैं। तप की भी कुछ क्रियाएँ हैं। इन क्रियाओं के साथ-साथ विचारणा जुड़ी हुई है। विचारणा अगर तप के साथ न जुड़ी हो, तो भी वह बेकार है। विचारणाएँ, आस्थाएँ, विश्वास और मान्यताएँ अगर आपकी योगाभ्यास क्रियाओं के साथ नहीं जुड़ी होंगी, तो भी बेकार हैं, निष्प्राण हैं, जानरहित हैं। निर्जीव, जीवनरहित हैं। केवल उनकी शक्ल है। योग की शक्ल है, तप की शक्ल है, लेकिन उनके अंदर प्राण नहीं है।

मित्रो! मैं चाहता था कि आपका योगाभ्यास प्राणवान बने, आपका तप प्राणवान बने। ऐसा प्राणवान बने, जैसे कि ऋषियों ने योग का महत्त्व बताया है, तप का महत्त्व बताया है। आप ठीक उसी क्रिया के आधार पर करते, तो वैसे ही लाभ उठाकर जाते और धन्य हो जाते और हमारा शिविर धन्य हो जाता। आपका आगमन धन्य हो जाता और आपको बुलाना धन्य हो जाता। मैं चाहता हूँ कि आगे से इस ब्रह्मवर्चस की उपासना, जो योग और तप— दोनों के ऊपर टिकी हुई है, उसको आपको समझाऊँ। उसकी क्रिया और प्रक्रिया का स्वरूप समझने के लिए आप कल से तैयार रहिए। आज मैंने आध्यात्मिक जीवन के लिए योग और तप की बात बताई। सांसारिक जीवन के लिए श्रम की बात बताई। आलस्य और प्रमाद को छोड़कर के आप श्रम का जीवन जिएँ, व्यवस्थित जीवन जिएँ। कल मैंने भौतिक जीवन के लाभ बताए थे। आज मैं आपको आध्यात्मिक जीवन की भूमिका बता रहा हूँ। इसके लिए जो योगाभ्यास कराए जा रहे हैं, उनका स्वरूप भी आपको समझाऊँगा। उनके अंदर जो कमी-बेसी हो जाती हैं, जो भूलें और गलतियाँ हो जाती हैं, उनको भी समझाऊँगा। बस, आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शांतिः ॥

कोलकाता में एक बार भीषण अकाल पड़ा। मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी इसका शिकार होकर दम तोड़ने लगे। कोलकाता के एक सेठ मोहनदास अत्यंत धनवान थे, पर वे बहुत करुणावान भी थे एवं भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त थे। अकाल से मरते व्यक्तियों व पशुओं को देखकर उनका हृदय दयार्द्र हो उठा। उन्होंने मुनीम को तिजोरी से धन निकालकर उससे खाद्यान्न व हरा चारा खरीदकर गरीबों एवं पशुओं में बाँट देने को कहा। सेठ जी का पुत्र अपने पिता के इस आदेश पर बहुत चकित व दुःखी हुआ। उसे लग रहा था कि जीवनभर की पूँजी लुटाई जा रही है, जिस पर हमारा अधिकार है। पुत्र का चेहरा देखकर सेठ जी उसकी मनःस्थिति समझ गए। पुत्र को समझाते हुए उन्होंने कहा—"यदि मेरे पास धन होते हुए भी मैं भूख से मरते लोगों को खाद्यान्न नहीं दूँगा, उन्हें मर जाने दूँगा, तो मैं अपने भगवान को क्या मुँह दिखाऊँगा। सभी जीव भगवान के बनाए हुए हैं, उन्हीं का अंश हैं, मेरे लिए ये मेरे भगवान के समान ही हैं। मेरा सारा धन मेरे इष्टदेव भगवान कृष्ण का ही तो है, मैं तो उनका मुनीम मात्र हूँ। इस धन से उनके अंशस्वरूप प्राणियों व पशुओं की जान बच जाएगी, तो मेरा संपत्ति अर्जित करना सार्थक हो जाएगा।

यज्ञीय अनुसंधान केंद्र की स्थापना

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परमपूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के महत्त्वपूर्ण चिंतन को साकार रूप देने के लिए कृतसंकल्प एक अनूठा शैक्षणिक संस्थान है। पूज्य गुरुदेव का चिंतन था कि मात्र साक्षरता विकसित करना, शिक्षा का उद्देश्य हो सकता है, परंतु मानवीय चेतना के जागरण का कार्य तो वह विद्या ही कर सकती है, जिसके माध्यम से हमारे जीवन में साक्षरता ही नहीं, वरन सार्थकता का भी उद्भव हो पाता है।

उसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आज अनेकों प्रकल्प, योजनाएँ, गतिविधियाँ एवं प्रयास देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा किए जा रहे हैं और उनको एक सफल स्वरूप पाता देखकर मात्र विश्वविद्यालय के सदस्य ही नहीं, वरन देश-विदेश के अनेक गायत्री परिजन भी उत्साहित, गौरवान्वित एवं कृतार्थ अनुभव करते प्रतीत होते हैं।

विद्यार्थी में व्यक्तित्व का विकास करने के लिए परमपूज्य गुरुदेव ने भारतीय संस्कृति एवं वैदिक विरासत को एक महत्त्वपूर्ण आधार माना। भारत में वैदिककाल से ही भारतीय संस्कृति का केंद्रीय विषय यज्ञ रहा है। यज्ञ न केवल जीवन जीने की एक शैली के रूप में भारतीय चिंतन का अंग रहा है, बल्कि इसका व्यापक अनुप्रयोग मानवीय स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण, कृषि, पर्यावरण शुद्धि एवं देवत्व जैसे गुणों को विकसित करने वाली चिंतनशैली के रूप में सबके सामने आता रहा है।

इस गंभीर भाव को केंद्र में रखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा भारत के एक अत्याधुनिक एवं पहले यज्ञ अनुसंधान केंद्र की स्थापना की गई। देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित इस केंद्र का नाम याज्ञवल्क्य यज्ञ अनुसंधान केंद्र रखा गया है। ज्ञातव्य है कि परमपूज्य गुरुदेव ने सन् 1979 में ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में इस विधा को यज्ञ चिकित्सा के रूप में प्रतिष्ठित किया था। वहाँ से चली इस यात्रा ने आज एक बृहत् रूप धारण कर लिया है और उसी विस्तृत स्वरूप को इस अनुसंधान केंद्र के रूप में स्थापित किया गया है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति जी द्वारा सन् 1979 में ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में इस क्षेत्र में उल्लेखनीय शोध संपन्न किए गए। इसी अनुसंधान को आधार बनाते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा अब तक 7 पी-एच.डी. यज्ञ विज्ञान के विविध आयामों पर संपन्न की गई हैं। इन्हीं शोधों को सूत्रबद्ध करते हुए इस अनुसंधान केंद्र में माइक्रोबायोलॉजी, फाइटोकेमिकल, प्लान्ट फिजियोलॉजी, इलेक्ट्रोफिजियोलॉजी इत्यादि विषयों की प्रयोगशालाएँ बनाई गई हैं तथा इसे 7 हिस्सों में बाँटा गया है।

इनमें से पहली प्रयोगशाला के द्वारा यज्ञीय धूम्र का विभिन्न रोगकारक बैक्टीरिया पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जा रहा है। इसमें यज्ञ में प्रयुक्त समिधाओं एवं औषधियों का हवा, पानी और मिट्टी के रोगकारक विषाणुओं पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह जाँचने हेतु आधुनिक उपकरणों को स्थापित किया गया है। दूसरी प्रयोगशाला में एक बंद यज्ञकक्ष का निर्माण किया गया है, जिसमें एयर सैम्प्लर मशीन के द्वारा यज्ञीय धूम्र को रसायन में बदलकर उसमें सन्निहित तत्त्वों का स्पेक्ट्रोफोटोमीटर द्वारा मापन किया जाता है। तीसरी प्रयोगशाला में विभिन्न कोशिकाओं पर पड़ने वाले प्रभावों को मापा जाता है। इस हेतु यहाँ पर रोटरी इवेपरेटर, लाइयोफिजियोलाइजर इत्यादि मशीनों को लगाया गया है।

चौथी प्रयोगशाला में आयुर्वेद में वर्णित रोगप्रतिकारक औषधियों द्वारा यज्ञ करने से रोगी पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जा रहा है। मुख्य रूप से यज्ञ चिकित्सा द्वारा मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मानसिक रोग, वातरोग, कैंसर आदि पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन यहाँ किया जा रहा है। पाँचवीं प्रयोगशाला में शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर पड़ने वाले यज्ञीय प्रभावों का अध्ययन किया जा रहा है तो वहीं छठी प्रयोगशाला द्वारा यज्ञीय धूम्र एवं यज्ञ द्वारा प्रदूषण पर पड़ने वाले प्रभावों पर अनुसंधान किया जा रहा है। सातवीं प्रयोगशाला का उद्देश्य कृषि क्षेत्र में अनुसंधान करना है।

इस अनुसंधान केंद्र का उद्घाटन करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि यह अनुसंधान केंद्र परमपूज्य गुरुदेव के चिंतन एवं दर्शन को एक ऐसा रूप प्रदान करने में सक्षम होगा, जिसके माध्यम से न केवल आस्थावान परिजन, वरन वैज्ञानिक भी एक नूतन जीवन-दृष्टि को प्राप्त कर पाने में सक्षम होंगे। इस अवसर पर उन्होंने इस अनुसंधान केंद्र के मुख्य समन्वयक डॉ० विरल पटेल को बहुत-सी शुभकामनाएँ प्रदान कीं।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा एक प्रेरणादायी कार्यशाला का आयोजन किया गया। यह कार्यशाला देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं यूसर्क के संयुक्त तत्त्वावधान में संपन्न हुई। इस कार्यशाला का विषय गंगा प्रदूषण एवं उसके निवारण हेतु चलाया जा रहा निर्मल गंगा अभियान था। कार्यक्रम के संयोजक प्रो० अभय सक्सेना द्वारा कार्यक्रम की रूपरेखा को प्रस्तुत किया गया। उसके उपरांत देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने गंगा के वैज्ञानिक महत्त्व एवं आध्यात्मिक आधार पर प्रकाश डाला।

इसके साथ ही कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री आनंदवर्धन जी, मुख्य सचिव उत्तराखंड द्वारा एक अत्यंत ही प्रेरणास्पद मार्गदर्शन प्रदान किया गया। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री बलदाऊ देवांगन, यूसर्क के प्रो० सुरेश नौटियाल, डॉ० आशुतोष भट्ट एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के डॉ० शिव नारायण प्रसाद, डॉ० अरुणेश पाराशर, डॉ० उमाकांत इन्दौलिया एवं श्री राधेश्याम सोनी जी उपस्थित रहे।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा कोविड काल में जनजागरूकता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया गया और इसी कारण से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के राष्ट्रीय सेवा योजना विभाग को श्री दीपक रावत, कुंभ मेला अधिकारी द्वारा विशेष सम्मान प्रदान किया गया। उल्लेखनीय है कि कोरोना काल में पुलिस प्रशासन एवं कोरोना वारियर्स को भोजन पहुँचाने से लेकर जनसामान्य को स्वच्छता के प्रति जागरूक करने के विभिन्न दायित्वों का निर्वहन देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा किया गया था।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा कोविड-19 के समस्त मानदंडों का अनुशीलन करते हुए पी-एच०डी० की प्रवेश परीक्षा को भी संपन्न कराया गया। परीक्षा नियंत्रक डॉ० कृष्णा झरे एवं पी-एच०डी० समन्वयक डॉ० स्मिता वशिष्ठ की टीम द्वारा इस परीक्षा का श्रेष्ठ समन्वयन किया गया। इस परीक्षा में कुल 107 लोगों ने आवेदन किया था, जिसमें 50 से अधिक विद्यार्थी नेट, जेआरएफ, एम-फिल० इत्यादि योग्यताओं को अर्जित किए हुए थे।

परीक्षा में पहला प्रश्नपत्र शोध प्रविधि का था, जो सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य था एवं दूसरा प्रश्नपत्र वस्तुनिष्ठ रूप में था। इस कार्य को परीक्षा विभाग के सदस्यों के द्वारा कुशलतापूर्वक संपन्न कराया गया। उक्त कार्य को कराने में परीक्षा विभाग की टीम के डॉ० संतोष विश्वकर्मा एवं ईआरपी विभाग के श्री प्रशांत सोनी जी की टीम विशेष रूप से सक्रिय रही। परीक्षा में सफल रहे विद्यार्थियों ने तुरंत ही कोर्सवर्क इत्यादि का अध्ययन भी प्रारंभ कर दिया। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006
Yes Bank	Dampier Nagar, Mathura	YESB0000072	007263400000143

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

अपनों से अपनी बात

जाग्रत तीर्थस्थल है—शांतिकुंज

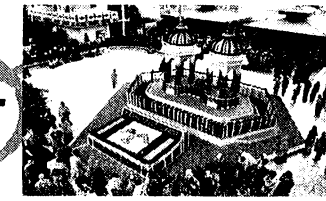

भारतीय संस्कृति में तीर्थों एवं तीर्थाटन का अपना एक विशेष आध्यात्मिक महत्त्व कहा गया है। तीर्थयात्राओं के साथ ही विशेष धर्मानुष्ठान भी कालांतर में जुड़ते चले गए। चारों धाम, ज्योतिर्लिंग, पीठ, आश्रम, धर्मक्षेत्र ऐसे न जाने कितने ही पवित्र स्थान भारतीय भूमि पर हैं—जहाँ प्रत्येक वर्ष भारतीय ही नहीं, विदेशों में बसने वाले अनेकों भारतीय मूल के ऐसे कितने ही लोग हैं, जो प्रतिवर्ष इन पवित्र तीर्थस्थलों की यात्रा पर जाते हैं और इस हेतु अनेकों रुपये भी खरच करते हैं। यदि औसत निकाला जाए तो प्रत्येक भारतीय मूल का व्यक्ति वर्ष में 1 सप्ताह तक ऐसे तीर्थस्थानों के लिए निकाल ही लेता है, जो चाहे उसके अपने नगर में हो अथवा किसी सुदूर स्थान पर।

इन तीर्थयात्राओं को जाने के पीछे के उद्देश्य मात्र भिन्न हो जाते हैं। किसी का उद्देश्य मात्र भ्रमण हो सकता है तो किसी का मनोकामनाओं की पूर्ति, किसी को तीर्थस्थल विशेष से भावनात्मक लगाव हो सकता है तो कोई कर्मफल के क्षय के लिए तपस्या के उद्देश्य से इन यात्राओं पर निकला होगा। कुछ के वहाँ जाने के पीछे का भाव कुतूहल का हो सकता है तो कुछ के लिए अंधश्रद्धा, पर अनेकों ऐसे हैं जो पूर्ण श्रद्धा, गहरे विश्वास के साथ ही इन स्थानों पर जाते हैं।

विचारशील लोग जानते हैं कि मात्र देवदर्शन, तीर्थदर्शन कर लेने भर से किसी को आध्यात्मिक विभूतियों का पिटारा हाथ नहीं लगता। जब तक सच्चे भाव से कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया जाता है, तब तक उसके सत्परिणाम हमारे हाथ में कैसे लग सकते हैं। इससे कम में किसी भी आध्यात्मिक विभूति को प्राप्त कर पाना न किसी के लिए संभव हो पाता है और न कभी हो सकेगा।

विचार करने योग्य तथ्य यह है कि यह बात लोगों को पता नहीं—ऐसा नहीं है। फिर क्या कारण है कि प्रतिवर्ष तीर्थयात्रियों की संख्या बढ़ती ही जाती है, कम नहीं होती। यदि इसके पीछे का कारण पर्यटन मात्र होता तो एक-दो बार उन स्थानों पर चले जाने के बाद वहाँ दोबारा लौटने के पीछे उन तीर्थयात्रियों के मन में कोई उल्लेखनीय भाव नहीं होना चाहिए था। पर ऐसा होता नहीं है। संख्या घटने के स्थान पर प्रतिवर्ष बढ़ती ही प्रतीत होती है। इसके पीछे के कारण पर चिंतन-मनन करने पर दृष्टि इस बिंदु पर जाती है कि आखिर किस कारण से ऋषि-मुनियों ने तीर्थाटन की इस परंपरा को प्रारंभ किया होगा?

ऐसा नहीं है कि शास्त्र रचयिताओं को यह पता न होगा कि कर्म का फल तो आत्मपरिष्कार एवं लोक-मंगल करने पर ही मिल पाता है, फिर क्या सोचकर उन्होंने एक नहीं, वरन अनेक स्थलों पर तीर्थगमन को पुण्यार्जन का आधार बताया और धर्मपथ का अवलंबन करने वालों को इन सुदूर तीर्थों पर जाने और एक तरह से दुरूह और कष्टसाध्य भाग-दौड़ के लिए प्रोत्साहित किया। इसके ऊपर चिंतन करते समय में एक तो यह सत्य था कि तीर्थ ऐसे स्थानों पर स्थापित किए गए, जो प्राकृतिक दृष्टि से सुरम्य स्थानों पर थे, वहाँ जाने पर व्यक्ति के भटकते मन को शांति मिलती थी एवं आज भी मिलती है।

बाह्य स्वरूप की सुरम्यता के अतिरिक्त तीर्थों की यह विशेषता भी थी कि उनका वातावरण पवित्र भाव का संचार करता था। जो उन स्थानों पर पहुँचते थे—वे स्थान की पवित्रता से प्रभावित होकर कुछ ऐसा करने को तत्पर होते थे, जिसको आत्मनिर्माण, आध्यात्मिक परिष्कार के पथ में बढ़ने के लिए अभूतपूर्व माना जा सके। योग, तप, संयम, साधना जैसे पथ पर बढ़ने के लिए आवश्यक ऊर्जा व उत्साह उनको ऐसे स्थानों पर स्वत: ही मिल जाया करते थे।

इसके अतिरिक्त उन स्थानों पर पहुँचने पर साधक को उच्चस्तरीय पथ का अनुगमन करने के लिए प्रेरणा देने का काम ऐसे अध्यात्मवेत्ता, मनीषी, ऋषि एवं तपस्वी करते थे, जिन्होंने स्वयं उस पथ का अनुशीलन करके उल्लेखनीय विभूतियाँ एवं क्षमताएँ अर्जित की थीं।

उन महापुरुषों का आवास इस तरह की शिक्षण संस्थाओं में होता था, जिनको हम आश्रम या आरण्यकों के नाम से जानते हैं। पहले के समय में जो इन आश्रमों तक पहुँचते थे, वे वहाँ घंटाभर रुककर अपनी फ्लाइट पकड़ने के लिए भागने वाले नहीं होते थे, बल्कि वे होते थे—जो उस दिव्य वातावरण में रुककर साधना करने, कुछ अच्छा सीखने तथा पुनीत एवं परिमार्जित संस्कारों को अपने जीवन में समाविष्ट करने का भाव लिए हुए होते थे। इसीलिए सांसारिक वातावरण में जिस साधनात्मक ऊर्जा को अर्जित करने में वर्षों का समय लगता था, वो ऐसे पवित्र वातावरण में कुछ ही दिनों में अर्जित हो जाया करती थी।

उन दिनों गुरुकुल भी तीर्थस्थलों पर ही होते थे। स्वाभाविक है कि उन गुरुकुलों में पढ़ने वाले विद्यार्थी ऐसे व्यक्तित्वों के धनी होते थे, जिनके व्यक्तित्व से श्रद्धा, संयम, अनुशासन, आज्ञापालन जैसे सद्गुणों की सुगंध आती थी। ऐसे व्यक्तित्व फिर समाज में लौटने पर एक अद्भुत, अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया करते थे। फिर किशोरवय विद्यार्थियों के अतिरिक्त इन तीर्थस्थलों पर अनुभवी वयस्कों के लिए संन्यासी तथा वानप्रस्थी भाव से रहने की परंपरा भी थी।

स्पष्ट है कि ऐसे भाव को लेकर स्थापित तीर्थ, समाज में प्राण-ऊर्जा के संचार का महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न किया करते थे। बालकों, युवाओं, गृहस्थों, महिलाओं, वृद्धों सभी को अपने जीवन की दिशाधारा प्राप्त करने का सुअवसर इन आश्रमों में मिलता था। इन्हीं सब कारणों को ध्यान में रखकर शास्त्रज्ञ विद्वानों ने, शास्त्रकारों ने जनसामान्य को यह प्रेरणा देने का कार्य किया कि वे तीर्थाटन को जीवन के आवश्यक कर्त्तव्यों में एक मानें। उसके पीछे का भाव पर्यटन नहीं था, बल्कि उस लाभ को अर्जित करना था, जो ऐसे ऊर्जावान स्थानों के अतिरिक्त कहीं अन्य से प्राप्त कर पाना शायद संभव भी न हो पाता।

इसी कारण इस देश के प्रत्येक नागरिक को देवतुल्य कहलाने का सौभाग्य मिला एवं भारतभूमि की गणना एक जाग्रत देवालय में की गई। दुर्भाग्यवश वह भाव आज कहीं खो गया-सा प्रतीत होता है। न तो उस स्तर के व्यक्तित्व कहीं दिखाई पड़ते हैं और न ही ऐसे तीर्थयात्री मिल पाते हैं, जो किसी गंभीर अभीप्सा को ध्यान में लेकर उन पवित्र स्थलों को जाएँ। परिणाम आँखों के सामने है—तीर्थयात्रा एक आडंबर बनकर रह गई है। उसके पीछे का भाव व प्राण तिरोहित से हो गए प्रतीत होते हैं।

ये बातें यहाँ लिखने के पीछे का विशेष उद्देश्य यह है कि परमपूज्य गुरुदेव द्वारा शांतिकुंज की स्थापना के पीछे का एक प्रमुख उद्देश्य एक ऐसे ही तीर्थ को प्रतिष्ठित करना था, जहाँ पहुँचकर साधकों को उन्हीं भावों की अनुभूति हो, जिनके विषय में अभी लिखा गया है। इसीलिए उन्होंने तप-ऊर्जा से सिंचित एक ऐसे स्थान का चयन किया, जहाँ भारतीय संस्कृति की इस गौरव-गरिमा को महसूस कर पाना संभव हो सके। जहाँ पहुँचने पर भटकों को दिशा मिल पाना एवं मूर्च्छितों में नवचेतना का संचार कर पाना संभव हो सके।

गंगा की गोद, हिमालय की छाया, सप्तर्षियों की तपोभूमि वाले इस गायत्रीतीर्थ का निर्माण इसी भाव के आधार पर किया गया, ताकि उन ऋषियों द्वारा प्रवर्तित ज्ञान की धाराओं का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साक्षात्कार यहाँ किया जा सके।

धर्म का अर्थ है—'धारण करना'। धारण करने योग्य केवल श्रेष्ठताएँ हैं, जिनको अपनाने से लौकिक जीवन में समृद्धि, सामूहिक विकास और आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है।

जिस तरह ऋषि परशुराम ने अवांछनीयता पर प्रहार किया—वैसे ही दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन का कार्य शांतिकुंज के द्वारा संचालित किया जा रहा है। जिस तरह भगीरथ, गंगा के अवतरण के सूत्रधार बने, वैसे ही ज्ञानगंगा के अवतरण का कार्य आज सप्तर्षियों का यह पावन क्षेत्र करता नजर आता है। महर्षि चरक की आयुर्वेद परंपरा, महर्षि याज्ञवल्क्य की यज्ञ परंपरा, देवर्षि नारद की युगसंगीत परंपरा, महर्षि पतंजलि की योग परंपरा एवं महर्षि कणाद की वैज्ञानिक अध्यात्मवाद परंपरा इसी शांतिकुंज के क्षेत्र में प्रश्रय पाती हुई, पुष्पित एवं पल्लवित होती देखी जा सकती हैं।

सरल शब्दों में कहें तो शांतिकुंज, युगतीर्थ—ऋषिसत्ताओं के सामूहिक शक्तिसंचार का प्रतिफल है और उसका प्रतिवर्ष एक बार का भ्रमण हर आध्यात्मिक पिपासु साधक का कर्त्तव्य बन जाता है। गायत्रीतीर्थ शांतिकुंज को आज के समय के जाग्रत तीर्थ स्थान के रूप में ही देखने, जानने एवं महसूस करने की आवश्यकता है। ❑

उल्लासी रंगों की होली

भर पिचकारी प्रीत रंग, सब पर बरसाना है।
रंगों का त्योहार मस्त फिर, आया होली का॥

जीवन के मिथ्या आडंबर, अब गल जाने दो,
मन के सारे कल्मष, रंगों में घुल जाने दो,
दिल में प्रीत जगाकर सबको, गले लगाना है।
अब जीवन में खिल जाएगा, रंग रंगोली का।
रंगों का त्योहार मस्त फिर, आया होली का॥

स्वर में ईश्वर का निवास, विश्वास सदा रखना,
ठेस न पहुँचे शब्द प्रेम रस, घोल-घोल कहना,
अपने जीवन में अनुभव का, बोध जगाना है।
गिरने पाए कभी न स्तर, अपनी बोली का।
रंगों का त्योहार मस्त फिर, आया होली का॥

अब अपने आचरण और, व्यवहार को रँगना है,
जीवन को प्यारी रिमझिम, बौछार से भरना है,
आदर्शों की बन मिशाल, जग में छा जाना है,
प्यार से करो सबको टीका, चंदन-रोली का।
रंगों का त्योहार मस्त फिर, आया होली का॥

क्षमा-दया-सेवा-करुणा, सहकार के उपवन में,
सप्त रंग में रँग जाएगा, तन-मन जीवन में,
उल्लासी रंगों से सबके, मन रँगवाना है।
बरस रहा अनुदान यहाँ, गुरुवर की झोली का।
रंगों का त्योहार मस्त फिर, आया होली का॥

—शोभाराम शशांक

'आपके द्वार-पहुँचा हरिद्वार' अभियान के अंतर्गत पवित्र गंगाजल परिजनों तक सुव्यवस्थित रूप से पहुँचाने के लिए की जा रही पूर्व तैयारी में मनोयोगपूर्वक श्रमदान में संलग्न शांतिकुंज, देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान अंतेवासी कार्यकर्त्ता परिजन।

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01- 02- 2021
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

'आपके द्वारा-पहुँचा हरिद्वार' अभियान के अंतर्गत संपूर्ण भारत के लिए प्रस्थान करने वाली टोलियों का बोधसत्र संपन्न, श्रद्धेयद्वय द्वारा टोलियों का मार्गदर्शन।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.–09927066291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org